भीतर

चौथी दुनिया

दिल्ली 29 मार्च से 5 अप्रैल 2009

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

बुश से भी खतरनाक है ओबामा

पेज 13

मूल्य 20 रुपये

“मैं किसी के घर खाना खाने नहीं जाता, यह हमारी प्रथा के खिलाफ है. आडवाणी जी के घर आया हूं, क्योंकि मुझे लगता है कि मैं अपने घर में आया हूं. इजरायल और भारत में दोस्ती के लिए गृह मंत्री के रूप में आडवाणी जी ने अहम भूमिका अदा की. यह एक ऋण है, जो हम हमेशा याद रखेंगे.”

चीफ रब्बाइ मेट्ज्गर

बीजेपी की सरकार बनाना चाहता है मोसाद

मोसाद के मंसूबों का बीजारोपण हिंदुस्तान में आडवाणी की वजह से ही हुआ

डॉ मनीष कुमार

इजरायल की खुफिया एजेंसी मोसाद भारत में बीजेपी की सरकार बनाना चाहती है. खुफिया सूत्रों से मिली जानकारी के अनुसार मोसाद ने भारत में फैले अपने नेटवर्क को चुनाव में बीजेपी और संघ परिवार की मदद के लिए लगा दिया है. अगर खुफिया एजेंसियों के हालिया इतिहास पर नजर दौड़ाएंगे, तो साफ हो जाएगा कि मोसाद बीजेपी की मदद क्यों कर रहा है और क्यों आडवाणी को प्रधानमंत्री बनाना चाहता है.

आडवाणी जब भारत के गृहमंत्री थे, तब उन्होंने इजरायल की खुफिया एजेंसी मोसाद को भारत में अपना जाल फैलाने की इजाजत दी थी. कहा जाता है कि इसके पीछे पाकिस्तान को तबाह कर जम्मू-कश्मीर को आजाद कराने की आडवाणी की छिपी हुई हसरत काम कर रही थी. रॉ के अधिकारियों के मुताबिक इस गठजोड़ का मकसद था मिल-जुल कर आतंकवाद के खतरे से निपटना और पाकिस्तान का सफाया करना. मकसद चाहे जो भी हो, लेकिन ऐसी पहल से बीजेपी की मानसिकता साफ समझी जा सकती है. आडवाणी ने न केवल मोसाद को खुली छूट दी बल्कि भारतीय खुफिया एजेंसी रॉ को अपनी तहकीकात में मिलने वाली पाकिस्तान के खिलाफ सभी सूचनाओं को मोसाद के साथ साझा भी करने का करार किया. बीजेपी सरकार ने एक खास मानसिकता के तहत भारत में इजरायल की मदद से इस्लामिक आतंकवाद के जवाब में प्रति-रोधी आतंकवाद कायम करने की कोशिश की. इसके लिए बहुत बड़ा खुफिया जाल इजरायल और अमरीका के सहयोग से भारत में बिछाया गया. इस तरह बीजेपी सरकार के कार्यकाल के दौरान भारत में रॉ, सीआईए और मोसाद का गठजोड़ बना. इस गठजोड़ का आधार ये है कि दोनों देशों का दुश्मन एक ही है. मतलब इस्लामिक आंतकवाद और पाकिस्तान. बीजेपी सरकार ने इजरायल और अमेरिका के साथ मिल कर आतंकवाद और पाकिस्तान के खिलाफ स्ट्राइक एंड क्रश यानी हमला करने और कुचलने की नीति बनायी. इस तरह भारत में मोसाद ने अपने पैर जमाने शुरू किये. भारत की खुफिया एजेंसी और मोसाद के बीच सहयोग बढ़ा. भारत और इज़राइल के बीच इस समझौते के लिए आडवाणी ने गृहमंत्री रहते सन 2000 में इजरायल का दौरा भी किया था. बताया जाता है कि इसके बाद भारत, इज़रायल और अमेरिका की खुफिया एजेंसियों और कट्टर धार्मिक नेताओं के साथ बैठकों का दौर शुरू हो गया.

> हमारे पड़ोसी हमारे दुश्मन हैं. ईश्वर हमें ऐसी ताकत दे, जिससे हमें खुद का बचाव न करना पड़े.

सूत्र बताते हैं कि खुफिया एजेंसियों के पास आरएसएस के मोसाद और इजरायल के धार्मिक नेताओं के साथ बातचीत और मुलाकात से लेकर खतो-किताबत तक के खुफिया ताल्लुकात होने के सबूत मौजूद हैं. उनकी मजबूरी यह है कि वे खुल कर सामने नहीं आ सकते, क्योंकि भारतीय खुफिया एजेंसियों के अधिकारी भी मोसाद के साथ मिल कर काम करते हैं. बीजेपी सरकार ने मोसाद के साथ रिश्ते को छुपाने के लिए कई हथकंडे अपनाये. इस रिश्ते को अलग अलग रूप देकर सरकार ने आधिकारिक करने की भी पहल की. मोसाद की मदद के लिए सीआईपीयू यानी सेंट्रल इंटेलीजेंस प्रोसेसिंग यूनिट बनाया गया. इसमें आईबी, सीबीआई, बीएसएफ और होम मिनिस्ट्री के उच्च अधिकारी सीधे तौर पर शरीक थे. अपनी योजना को आधिकारिक रूप देने के लिए पिछले दरवाज़े से वर्ल्ड कौंसिल ऑफ रिलीजस लीडर्स का गठन हुआ और हिंदू-यहूदी समिट का सिलसिला शुरू हुआ. नोट करने वाली बात यह है कि मोसाद और संघ का गठजोड़ भी धर्म की आड़ में हुआ.

5-7 फरवरी, 2007 में पहला यहूदी-हिंदू लीडरशिप समिट हुआ. दिल्ली के एक पांच सितारा होटल में इसका आयोजन किया गया. इसमें संघ से जुड़े और उसके नजदीकी 30 धर्माचार्यों ने हिस्सा लिया. इजराइल की तरफ से इसमें जो लोग शरीक हुए, उनका वास्ता इजराइल की सेना से रहा, इज़रायल सरकार की एजेंसियों से रहा है. इस समिट में इजराइल का एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली पहुंचा, जिसमें धार्मिक नेताओं के साथ साथ मोसाद और मोसाद के पूर्व एजेंट्स शामिल थे. इस सम्मेलन में 9 सूत्रीय घोषणा की गयी, जिसमें हिंदुओं और यहूदियों की साझा चुनौतियों को रेखांकित किया गया. इस घोषणा पर हिंदुओं की तरफ से आरएसएस के करीबी और धर्मसभा के चीफ स्वामी दयानंद सरस्वती और यहूदियों की तरफ से चीफ रब्बी योना मेट्ज्गर ने हस्ताक्षर किये. आचार्य दयानंद सरस्वती और कांची के शंकराचार्य जयेन्द्र सरस्वती ने आचार्य सभा और धर्मसभा के क्रिया-कलापों को सन 2001 में ही इजरायल के अधिकारियों और धार्मिक नेताओं के साथ शेयर करना शुरू कर दिया था. इस गतिविधि पर किसी की सीधी नज़र न पड़े, इसके लिए अमेरिका को जरिया बनाया गया. इसके लिए नार्थ अमेरिका में हिंदू कलेक्टिव इनीसिएटिव नाम की संस्था का गठन किया गया और आरएसएस की शाखा आचार्य सभा और धर्म सभा को उससे जोड़ दिया गया. इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों संगठनों ने धर्म की आड़ में संगठन बनाए ताकि उनकी गतिविधियां बेरोकटोक चल सके. यह बात इस बात से भी साफ हो जाती है, जो चीफ रब्बी मेट्ज्गर ने इस समिट के दौरान कही. उन्होंने कहा कि हमारे (भारत और इज़रायल) पड़ोसी हमारे दुश्मन हैं. अगर आप टेलीविजन पर देखें, तो हमारे इलाके में अशांति नजर आती है, जो हमारी परंपरा के खिलाफ है. हमलोग सिर्फ अपनी सुरक्षा चाहते हैं लेकिन मीडिया सिर्फ दूसरे पक्ष को दिखाता है. ईश्वर हमें ऐसी ताकत दे, जिससे हमें खुद का बचाव करना न पड़े.

इस समिट में चीफ रब्बी मेट्ज्गर ने बीजेपी लीडर लालकृष्ण के उन प्रयासों की भी तारीफ की, जिसकी वजह से भारत और इज़रायल के बीच दोस्ती और सहयोग बढ़ा.

▶ शेष पृष्ठ 2 पर

रक्षा सौदों के लिए चाहिए बीजेपी की सरकार

यह आडवाणी की पहल है, जिसकी वजह से भारत और इजराइल आंतकवाद के खिलाफ लड़ने के नाम पर साथ आये. मोसाद को पूरे भारत में अपना नेटवर्क तैयार करने की छूट मिल गयी. इसे रोकने के बजाय हमारी खुफिया एजेंसी ने भी मोसाद का खुल कर साथ दिया. भारत की गुटनिरपेक्षता सेमिनारों तक ही सीमित रह गई है. बीजेपी की सरकार के दौरान हिंदुत्व ब्रिगेड और कट्टर यहूदियों के वैचारिक मेलजोल ने इजरायल और भारत की नजदीकियां बढ़ा दी. खुफिया अधिकारी बताते हैं कि बीजेपी के शासनकाल में प्रधानमंत्री आफिस और अलग-अलग सत्ता केंद्रों पर यहूदी समर्थक हिंदू ब्रिगेड का कब्जा हो गया. एनडीए सरकार के दौरान कई सारे रिसर्च इंस्टीट्यूट का जन्म हुआ, जिन-का एकमात्र काम यह था कि देश में असुरक्षा की स्थिति को बढ़ा-चढ़ा कर पेश करके हथियार खरीदने के लिए जमीन तैयार की जाए. इसके बाद बीजेपी की सरकार ने इजराइल से हथियार खरीदने का सिलसिला शुरू किया. इन डीलों से आए कमीशन और किक बैक को संघ परिवार और उससे जुड़े संगठनों को फायदा हुआ. हैरानी की बात यह है कि बीजेपी की सरकार के जाने बाद भी इजराइल के साथ हुए सैन्य समझौते, न्यूक्लियर और मिसाइल टेक्नालॉजी की सा-झेदारी, खुफिया जानकारी का आदान-प्रदान कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थन से चलने वाली यूपीए सरकार के दौरान भी जारी रहा. इसका मतलब साफ है कि मोसाद के पैर भारत में इतने जम चुके हैं कि वो हमारे ही तंत्र का इस्तेमाल करता है और हमारी सरकार को कानोकान खबर तक नहीं होती. रक्षा सामग्री का निर्यात इजरायल की आमदनी का मुख्य जरिया है. हैरानी की बात यह है कि भारत इजराइल से हथियार खरीदने वाला सबसे बड़ा देश बन चुका है. अब यह सोचने वाली बात है कि ये कमाल कैसे हुआ. जिस देश के साथ हमारे ताल्लुकात के अभी कुछ ही साल हुए हैं, उसके हम इतने गहरे दोस्त कैसे बन गये. हमारे देश में जिस तरह से हथियार खरीदे जाते हैं, उससे तो यही लगता है कि बिचौलियों की भूमिका बहुत अहम है. यह मामला सिर्फ दोनों देशों के विदेश और रक्षा मंत्रालयों के बीच तक सीमित नहीं है. दरअसल मोसाद और रॉ का गठजोड़ ही इन दोनों देशों के बीच की बढती नजदीकियों को हवा दे रहा है. बीजेपी की सरकार के आने से फिर से रिसर्च इंस्टीट्यूट को सक्रिय कर दिया जाएगा. हथियारों की कमी का झूठा डर फैलाया जाएगा. फिर से इजरायल और भारत के बीच रक्षा सौदों का सिलसिला मजबूत होगा. यह भी एक वजह है कि इजरायल आडवाणी को भारत का प्रधानमंत्री बनाना चाहता है. मोसाद देश में बीजेपी की सरकार बनाना चाहता है.

हथियारों की खरीद में बिचौलियों की भूमिका अहम

मोसाद ने विदेश नीति की हवा निकाली

भारत फिलिस्तीन का हमेशा से समर्थक रहा है. आजादी से पहले गांधी और नेहरू ने इजरायल के निर्माण का विरोध किया था. इजरायल के साथ भारत के रिश्ते कैसे हैं, यह 1948 से ही गुप्त रहा. यही वजह है कि दोनों देशों को अपने-अपने दूतावास खोलने में 44 साल लग गये. 1992 में नयी दिल्ली में इजराइली दूतावास और तेल अवीव में भारतीय दूतावास बना. इजरायल और भारत के रिश्ते में बहुत बड़ा बदलाव तब आया, जब भारत में बीजेपी की सरकार बनी. भारत में पहली बार दक्षिणपंथी हिंदुत्व की विचार-धारा सत्ता में आयी और इजरायल पहले से ही फिलिस्तीनियों के अधिकारों को कुचलता रहा है. दोनों सरकारों की वैचारिक समानता ने दोनों को नजदीक कर दिया. बीजेपी सरकार ने भारत की विदेश नीति को बदल दिया. अरब देशों को नजरअंदाज करके इजराइल से दोस्ती कर ली. भारत की खुफिया एजेंसियों, बीजेपी और संघ परिवार के संगठनों के संरक्षण में मोसाद को खुली छूट मिल गयी. इसका परिणाम ये हुआ कि मोसाद ने सत्ता के

अलग अलग केंद्रों में अपने एजेंट्स बिठा दिये. कई नये संगठन बनाये गये. इजराइल और संघ परिवार की दोस्ती का मकसद है – मुसलमानों को खत्म करने की अंतर्राष्ट्रीय पहल. इन दोनों को लगता है कि ये दुश्मनों से घिरे हैं. इसके अलावा बीजेपी और इजरायल अमेरिका के साथ अच्छे संबंध बनाने का पक्षधर है. बीजेपी और इजरायल की विदेश नीति में काफी समानताएं हैं. यह भी एक वजह है कि इजरायल चाहता है कि भारत में बीजेपी की सरकार बने.

पृष्ठ 1 का शेष भाग

मोसाद और बीजेपी...

इज़राइल के पूर्व रब्बी डॉ डेनियल स्पर्बर.

2007 में नई दिल्ली में हुए यहूदी-हिंदू लीडरशिप समिट के दौरान ली गई सामूहिक तस्वीर.

आडवाणी के घर पर एक भोज का भी आयोजन हुआ जिसमें इज़रायली राजदूत डेविड डैनियली, लेफ्टि. जनरल (रिटायर्ड) जे आर एफ जैकब और स्वामी जयेंद्र सरस्वती मौजूद थे. इस दौरान चीफ रब्बी मेट्ज़गर ने कहा कि मैं किसी के घर खाना खाने नहीं जाता, यह हमारी प्रथा के खिलाफ है. आडवाणी जी के घर आया हूं, क्योंकि मुझे लगता है कि मैं अपने घर में आया हूं. इजरायल और भारत में दोस्ती के लिए गृह मंत्री के रूप में आडवाणी जी ने अहम भूमिका अदा की. यह एक ऋण है, जो हम हमेशा याद रखेंगे.

इस समिट से मिली जानकारियां इस बात के सबूत हैं कि क्यों इजरायल सरकार की एजेंसियां भारत में लालकृष्ण आडवाणी को भारत के प्रधानमंत्री के रूप में देखना चाहती हैं. इसी तरह दूसरा यहूदी-हिंदू लीडरशिप समिट मार्च 2008 में इजराइल में हुआ. संघ से जुड़े धर्माचार्यों ने तेलअवीव जाकर इसमें हिस्सा लिया. इस दौरान उनकी मुलाकात इजरायल के अन्य अधिकारियों से हुई.

2009 में भी यह समिट अमेरिका में होना था. लेकिन यह टाल दिया गया. बताया जा रहा है कि चुनाव के ठीक पहले इस तरह की मीटिंग का अगर मीडिया में खुलासा हो गया, तो विरोधी पार्टियों को एक मुद्दा हाथ लग जाएगा. तीसरे समिट को टालने की वजह थी मालेगांव धमाके मामले में हिंदू संगठनों पर सवाल उठना है. खुफिया जानकारी के मुताबिक इस धमाके में मोसाद और इजरायल पर भी शक की सुई जाती है.

मुंबई के आतंकी हमले में शहीद हुए एटीएस चीफ हेमंत करकरे अपनी शहादत के महज एक दिन बाद यानी कि 27 नवंबर 2008 को मालेगांव धमाकों से संबंधित एक बेहद सनसनीखेज खुलासा करने वाले थे. खुफिया सूत्रों के मुताबिक हेमंत करकरे को इस बात के पुख्ता सबूत मिल चुके थे कि मालेगांव बम धमाकों के आरोपियों के गहरे रिश्ते इजरायल की खुफिया एजेंसी मोसाद के अधिकारियों से थे और मोसाद से उनका संपर्क आरएसएस की बदौलत हुआ था, जहां से उन्हें प्रशिक्षण के साथ-साथ भरपूर आर्थिक मदद भी मिलती थी.

बीजेपी सरकार के दौरान इजरायली खुफिया एजेंसी मोसाद को दिल्ली में आफिस खोलने की छूट मिली. एफबीआई की तर्ज पर मोसाद ने भी दिल्ली में अपने पैर जमा लिए. इज़रायली खुफिया एजेंसी मोसाद का नेटवर्क दुनिया के कई देशों में फैला है.

मोसाद दुनिया की सबसे खतरनाक खुफिया एजेंसी है. मोसाद रक्षा सौदे, आर्थिक सहायता, मेडिकल और कृषि के क्षेत्र में मदद मुहैया कराता है. ये इजरायल और दूसरे देशों के बीच रिश्ते बनाने का काम करता है. लेकिन इनके काम में अगर कोई आड़े आता है तो उसे रास्ते से साफ कर देता है.

दुनिया भर में ये राजनीतिक हत्या और भितरघात के लिए जाना जाता है. इसका नेटवर्क खुफिया तरीके से काम करता है. इसके क्रिया-कलापों के बारे में किसी को कानोकान खबर नहीं होती है. यही वजह है कि भारत सरकार यहां के हिंदुओं और मुसलमानों को इजरायल के रिश्ते के बारे में खुल कर नहीं बताती है.

भारत सरकार और इजरायल के बीच 1970 से गुप्त संबंध हैं. लेकिन इसका कोई रिकार्ड लोगों के सामने नहीं है. जब से भारत में बीजेपी की सरकार बनी, मोसाद भारत में सक्रिय हो गया.

मोसाद के जरिये भारत में इजरायल से जासूसी के लिए खुफिया उपकरण भी मंगाये गये. खुफिया अधिकारियों के मुताबिक मोसाद देश के मुस्लिम संगठनों, भारत और पाकिस्तान के रिश्ते पर खास नजर रखता है. ये खबरें भी आ चुकी हैं कि मोसाद के एजेंट पर्यटक बन कर कश्मीर घाटी में जासूसी कर रहे हैं.

पिछले साल कुल 40 हजार इजरायलियों ने जम्मू-कश्मीर का दौरा किया है. यह सरकारी कामकाज पर भी नजर रखता है.खुफिया अधिकारियों के मुताबिक मोसाद ने 198 किमी लंबी जम्मू-कश्मीर और पंजाब की अंतर्राष्ट्रीय सीमा का मुआयना किया. समझौता एक्सप्रेस के ट्रैक पर भी गहन तफ्तीश की.

कहा तो यह भी जाता है कि जब मोसाद ने इस योजना को हरी झंडी दी, तब ही इसको सरकार ने लागू किया. यह आडवाणी की ही पहल है, जिसकी वजह से मोसाद का नेटवर्क पूरे देश में फैला. मोसाद के साथ खुफिया जानकारी के आदान-प्रदान का औपचारिक अनुमोदन हुआ और जम्मू-कश्मीर में आंतक की समस्या से निपटने के लिए मोसाद से भारत सरकार ने मदद ली.

पाकिस्तान को भी इस बात की पूरी जानकारी थी. लंदन में पाकिस्तान के राजदूत रहे कुतुबुद्दीन अज़ीज ने रॉ और मोसाद के एक साथ मिल कर काम करने के मसले पर अपनी सरकार को आगाह किया था. उन्होंने एक लेख में इस पर जो लिखा, वह डेंजरस नेक्सस बिटविन इजराइल एंड इंडिया नाम से अप्रैल 2001 में प्रकाशित भी हुई.

बीजेपी सरकार के दौरान मिली छूट और बीजेपी का सांप्रदायिक एजेंडा हर मायने में मोसाद के लिए फायदेमंद है. भारत में किसी दूसरी पार्टी की सरकार शायद मोसाद के लिए मुसीबत खड़ा कर सकती है, इसलिए मोसाद बीजेपी की मदद करने में जुटी है.

मोसाद और भाजपा का हाथ मिलाना, वह भी धर्म का सहारा लेकर, भारत की राजनीति को किधर ले जाएगा, अभी केवल इसका अंदाज़ा लगा सकते हैं.

राजनीति, खासकर चुनावी राजनीति भारतीय लोकतंत्र की बुनियादी मान्यताओं के इर्द-गिर्द ही चलनी चाहिए. पर ये राजनीति का हमाम है, देखना है कौन कितने कपड़े पहने है.

सुदर्शन और मोहन भागवत

आरएसएस के सरसंघचालक सुदर्शन आडवाणी के समर्थक नहीं थे, इसलिए पिछले लोकसभा चुनाव में संघ ने हिस्सा नहीं लिया था. विधानसभा चुनावों में भी बीजेपी को ज्यादा कुछ मदद नहीं मिली. सुदर्शन ने जिन्ना प्रकरण में आडवाणी की सरेआम जमकर खिंचाई की थी. सुदर्शन स्वदेशी में विश्वास रखते थे. अमेरिका के विरोधी थे. पश्चिमी सभ्यता की मुखालफत करते थे. वह अमेरिका और इजरायल को हिंदू-सभ्यता का दुश्मन मानते थे. विचारधारा को लेकर काफी कट्टर थे. उनका मानना था कि पश्चिमी सभ्यता और भारतीय सभ्यता में बुनियादी फर्क है. वे एक दूसरे के विरोधाभासी हैं. उनकी सबसे बड़ी खासियत यह भी थी कि उन्होंने कभी भी विचारधारा के साथ समझौता नहीं किया.

लेकिन संघ के नए प्रमुख मोहन भागवत प्रैक्टिकल और प्रैग्मेटिक हैं. राजनीति में आजकल प्रैक्टिकल और प्रैग्मेटिक होने का मतलब है, अमेरिका का समर्थन करना और उन विदेशी ताकतों से हाथ मिलाना, जो हमें परमाणु और मिसाइल तकनीक देती हैं और आंतकवाद से लड़ने में सहायता करती हैं. मोहन भागवत आडवाणीके समर्थक हैं. वह विचारधारा के साथ समझौता कर समय के साथ चलने में विश्वास रखते हैं. वह इस बात के हिमायती हैं कि संघ को आगे बढ़ाने के लिए सत्ता का होना जरूरी है. वे प्रैक्टिकल और प्रैग्मेटिक हैं. यही वजह है कि संघ की बागडोर संभालते ही उन्होंने ऐलान किया कि देश को बचाना है, तो हिंदुओं की 100 प्रतिशत वोटिंग होनी चाहिए. अगले ही दिन आडवाणी को संघ मुख्यालय से न्योता भेजकर यह साफ कर दिया गया कि संघ इस चुनाव में बीजेपी को जिताने के लिए पूरी ताकत लगा देगा. सुदर्शन के खराब स्वास्थ्य के बारे में पिछले कुछ महीने में कोई खबर नहीं आयी. फिर भी उनको हटाने की वजह उनका खराब स्वास्थ्य बताया गया. सारे फैसले गुपचुप और रहस्यमय ढंग से हुए. चुनाव के ठीक पहले सुदर्शन की विदाई में भी मोसाद का हाथ हो सकता है. अगर यह संयोग है तो काफी चौंकाने वाला है.

चिरंजीवी हैं चिरंजीव

वह चिरंजीवी हैं. उनके नाम का अर्थ है, लंबी उम्र वाला. वह सचमुच काफी दिनों तक जिएंगे. भौतिक शरीर उनका साथ भले छोड़ दे, पर उनकी ख्याति और यश हमेशा हमारे दिलो-दिमाग में बनी रहेगी. बचपन में अपने पिता के साथ खेतों में हल चलाते हुए उन्होंने किसानों की तकलीफों को महसूस किया. काफी मेहनत के बाद चेन्नई जाकर एक्टिंग करने के लिए फिल्म स्कूल में दाखिला लिया और उसके बाद दो दशक तक तेलुगु फिल्मों में चिरंजीवी तेलंगाना का बोलबाला रहा. उन्होंने लगभग 133 फिल्में की हैं, जिनमें से 91 फिल्मों ने 100 दिनों की रिकार्ड सफलता हासिल की और 18 फिल्मों ने सिल्वर जुबली मनाई है. तेलुगु फिल्म इंडस्ट्री में उन्हें वर्ष 1987, 1992 और 2002 में सर्वश्रेष्ठ अभिनेता के तौर पर नंदी अवार्ड से सम्मानित किया गया। इसके अलावा उन्हें वर्षा 1982, 1984, 1988, 1993, 1999, 2002 और 2004 में तेलुगु फिल्मों के लिए फिल्मफेयर अवार्ड से नवाजा गया। फिल्मों में मनचाहा मुकाम पाने के बाद उन्होंने गरीबों के लिए आई बैंक, ब्लड बैंक और चैरिटेबल ट्रस्ट खोला. उनके लोकहितैषी कामों के लिए ही उन्हें पद्मभूषण भी मिला है. फिल्मों में नाम कमाने के बाद चिरंजीवी ने राजनीति में अपने दांव लगाने की तैयारी की है. 1983 में आए नंदमुरि तारक रामाराव की तरह प्रजा राज्यम पार्टी के नेता चिरंजीवी भी राजनीति में अपनी साख बनाने की कोशिश कर रहे हैं. हालांकि उनकी परेशानी यह है कि उन्हें कोई ढंग का उम्मीदवार नहीं मिल पा रहा है. इस बार का मुकाबला मुख्य तौर पर कांग्रेस और तेलुगुदेशम की ग्रांड एलायंस में हो रहा है. 26 अगस्त, 2008 को मदर टेरेसा के जन्मदिन पर गठित हुई चिरंजीवी की प्रजा राज्यम पार्टी अभी लोकसभा चुनाव के बजाय विधानसभा चुनाव पर ध्यान दे रही है. चिरंजीवी मुकाबले को त्रिकोणीय बनाने की कोशिश कर रहे हैं.

नंदमुरि तारक रामाराव की तरह प्रजा राज्यम पार्टी के नेता चिरंजीवी भी राजनीति में अपनी साख बनाने की कोशिश कर रहे है. हालांकि उनकी परेशानी यह है कि उन्हें कोई ढंग का उम्मीदवार नहीं मिल पा रहा है. इस बार का मुकाबला मुख्य तौर पर कांग्रेस और तेलुगुदेशम की ग्रांड एलायंस में हो रहा है.

नई पार्टी होने की वजह से पीआरपी के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह अपने खर्चों का आकलन रखे, क्योंकि विधानसभा चुनाव का खर्च लोकसभा से कम आता है. पार्टी के कुछ नेता यह भी कहते हैं कि विधानसभा सीटें जीतना आसान है, पर फिलहाल पार्टी के लिए उम्मीदवार तय करना ही मुश्किल काम है. इस पार्टी में अधिकांश वे लोग हैं, जिन्हें तेलुगुदेशम पार्टी और कांग्रेस ने टिकट नहीं दिया. ऐसे में उनके लिए चिरंजीवी का दामन थामना मजबूरी समझी जा सकती है. प्रख्यात टेक्सटाइल/गार्मेंट्स व्यापारी बोमन्ना राजकुमार का नाम लोकसभा के राजमुंद्री सीट के लिए प्रस्तावित किया है. पूर्व मंत्री पलेती रामाराव का नाम ओंगले सीट के लिए विचार किया जा रहा है. पार्टी ने बापटला सीट के लिए पूर्व आईएएस अधिकारी दनाम के नाम पर विचार किया गया है, लेकिन उन्होंने पूर्वी गोदावरी के अमलाहपुरम क्षेत्र से चुनाव लड़ने की इच्छा जताई. विशाखापत्तनम, विजयवाड़ा, नरसाओपीटा जैसी प्रतिष्ठित सीटों के लिए अच्छे उम्मीदवारों की तलाश अभी पूरी नहीं हुई है. विजयवाड़ा से चिरंजीवी के मित्र कोनेरू कुमार और इस क्षेत्र के चर्चित डॉक्टर सामराम के साथ ही कुछ नामों पर विचार किया जा रहा है. रामकी ग्रुप के मालिक वेणुगोपाल रेड्डी के नाम पर आरंभ में नरसाओपीटा के लिए विचार किया गया था लेकिन पार्टी में उनके टिके रहने पर ही संदेह के बादल छाने लगे हैं, क्योंकि उन्होंने हाल ही में चुनाव लड़ने की कोशिश की, जो पार्टी को पता है. मछलीपट्टनम सीट पर पार्टी में नंबर दो, चिरंजीवी के बहनोई और प्रमुख रणनीतिकार अलु अरविंद के नाम पर विचार किया जा रहा है. तेलंगाना की महबूबनगर और पेडापल्ली सीटें एनआरआई उम्मीदवारों को आवंटित की जा सकती हैं. कुर्नूल और निजामाबाद सीटों के लिए नए नामों पर विचार किया जा सकता है. निजामाबाद सीट के लिए पूर्व केंद्रीय मंत्री पी शिवशंकर या उनके पुत्र के नाम पर चर्चा जारी है. तिरुपति से वाराप्रसाद के नाम पर चर्चा जारी है. उन्होंने हाल ही में तमिलनाडु कैडर के आइएएस अधिकारी पद से त्यागपत्र दिया था. चित्तूर सीट के लिए प्रत्याशी की खोज चल रही है.

पूर्वमंत्री अमरसिंह तिलावत को अदिलाबाद सीट से उम्मीदवार बनाया जा सकता है. पीआरपी के आधिकारिक प्रवक्ता परकला प्रभाकर के नाम पर पश्चिम गोदावरी जिले के नरसापुर से उम्मीदवार बनाया जा सकता है. पूर्व मंत्री खलील बाशा के नाम पर कड़पा सीट के लिए विचार किया जा रहा है. चिरंजीवी के छोटे भाई पवन कल्याण भी टॉलीवुड में काफी नाम कमा चुके हैं. अपने बड़े भाई को जिताने के लिए वह पूरी तरह चुनावी कैम्पेन में उतर चुके हैं. चिरंजीवी अपनी माता द्वारा सिखाए हुए जाति, वर्ग और धर्म के भेद को नहीं मानते है. उन्होंने युवा ताकत को प्रमुखता दी है. आंध्रप्रदेश की राजनीति में हमेशा से फिल्मी सितारों का बोलबाला रहा है. कांग्रेस नेता दासरी नारायण राव, मरथुर गोपाला रामचंद्रन ने कई वर्षों तक फिल्मों में स्क्रिप्ट राइटर का किरदार अदा किया और फिल्मों में काफी नाम कमाने के बाद राजनीति में आए और तमिलनाडु के मुख्यमंत्री बने. जयललिता ने भी 1961 से 1980 तक फिल्मों में नाम कमाया और 1981 में एआईडीएमके से जुड़ीं. दक्षिण के फिल्म कलाकारों ने राजनीति में अच्छा मुकाम हासिल किया है. चिरंजीवी के हाथ क्या आता है, यह तो वक्त ही बताएगा.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया

आर एन आई रजि. न. 45843/86

वर्ष 23, अंक 2

प्रधान संपादक

संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय

के - 2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.

संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

“गोली से नहीं सियासत से शहीद हुए हेमंत करकरे

रूबी अरुण

ऐसा क्यों होता है कि अपनी-अपनी डफली बजाने की फिराक़ में सियासी पार्टियां किसी का जीना हराम कर देती हैं. हक़ीकत से वाबस्ता हुए बगैर किसी पर भी तोहमतों की झड़ी लगा देती हैं. किसी के भी अहसास का ख्याल नहीं रखतीं. पूर्व एटीएस चीफ हेमंत करकरे की पत्नी कविता करकरे की आंखों से आंसू नहीं... जैसे लावा बह निकला हो. मैं हतप्रभ, भला क्या जवाब देती, किन भावभीने शब्दों से उनके आंसू पोंछने का जतन करती.

मैं तो उनसे मालेगांव बम धमाकों की हक़ीकत जानने की जुगत में गयी थी. यह जानने की जिज्ञासा थी कि आख़िरकार हेमंत करकरे को कहां से वे सुराग मिले, जिनकी बिना पर एटीएस ने आरोपी के तौर पर साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर को गिरफ्तार किया. क्या है उस वारदात का सच, जिसके खुलासे ने पूरे देश में ज़लज़ला पैदा कर दिया. क्या कुछ जिक्र किया है एटीएस ने नासिक कोर्ट में दाखिल अपनी चार्जशीट में? कुछ तो बताते ही होंगे हेमंत इस बाबत घर में. राजनीतिक दलों से लगे बेहिसाब आरोपों से उपजा तनाव घर के माहौल को भी बोझिल बनाता ही होगा. कुरेदती हूं मैं कविता को. माहौल थोड़ा गमगीन सा लगने लगता है. कविता कमरे की दीवार पर टंगी हेमंत की हंसती-खिलखिलाती तस्वीर निहारती हैं, मानो खुद को संजो रही हों. स्मृतियों के बियाबान में भटकती कविता बोल उठती हैं- दरअसल मालेगांव में धमाका, सिमी के धमाकों के जवाब में किया गया था. यह इस्लामिक आतंकवाद का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए हिंदू आतंकवाद को स्थापित करने की कोशिश थी. मालेगांव बम धमाकों में साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर के शामिल होने के सबूत तत्कालीन एटीएस चीफ हेमंत करकरे को संघ के नेताओं से ही मिले थे. हेमंत करकरे के संघ परिवार से रिश्ते साध्वी प्रज्ञा से कहीं पुराने थे. हेमंत करकरे संघ के सदस्य तो नहीं थे, पर संघ का मुख्यालय उनके लिए घर सरीखा ही था. हेमंत करकरे की माता कुमुदिनी करकरे आरएसएस की वरिष्ठ और बेहद सक्रिय सदस्य हुआ करती थीं. पिता कमलाकर करकरे जरूर वामपंथी विचारधारा के थे. हेमंत ने पिता की छत्रछाया में वामपंथी फलसफे को भी गहराई से समझा, पर हेमंत करकरे पर मां की छाप ज़्यादा थी. बचपन में वह अक्सर अपनी मां के साथ नागपुर स्थित संघ के मुख्यालय जाते और वहां की गतिविधियों में खासी दिलचस्पी लिया करते. हेमंत करकरे मूल रूप से नागपुर के धन-तोली के रहने वाले थे, इसलिए वे संघ के क्रिया-कलापों में गाहे-बगाहे शिरकत भी करते. माता कुमुदिनी करकरे की वजह से हेमंत करकरे की दोस्ती आरएसएस, वीएचपी और बजरंग दल के नेताओं से भी थी. यही संपर्क मालेगांव बम धमाकों की तफ्तीश में एटीएस चीफ के मददगार बने. साध्वी प्रज्ञा वीएचपी की महिला शाखा दुर्गा वाहिनी की सदस्य हैं, लिहाजा उनके इरादों की भनक संघ के कुछ खास सदस्यों को भी थी. साध्वी प्रज्ञा जिस प्रखरता से आगे बढ़ रही थीं और जिस तेजी से उनकी पैठ देश के दिग्गज हिंदू कट्टरवादी नेताओं के बीच बन रही थी, उससे भी संघ के कुछेक नेता खार खाए बैठे थे. उनतीस सितंबर के बम धमाकों के बाद जब एटीएस ने अपनी तफ्तीश शुरू की, तो पता चला कि वारदात में एक स्कूटर का इस्तेमाल हुआ है. छानबीन शुरू हुई और यहां हेमंत करकरे के पुराने संपर्कों ने बखूबी साथ निभाया. संघ के नेताओं से ही हेमंत करकरे को पुख्ता सुराग मिलने लगे. फिर तो एक के बाद एक कड़ियां सुलझती चली गईं. साध्वी और अन्य पकड़े गए आरोपियों के खिलाफ एटीएस के पास पक्के सबूत जमा होते चले गए. यही वजह रही कि तमाम छींटाकशी और आरोप भी एटीएस की जांच में रोड़े नहीं अटका सके. एटीएस ने अपने चीफ को गंवाने के बाद भी उन्हीं की तफ्तीश की दिशा में काम किया. आख़िरकार 19 जनवरी 2009 को एटीएस ने सभी आरोपियों के खिलाफ़ चार हज़ार पन्नों से भी ज़्यादा की चार्जशीट अदालत में दाखिल कर दी. कविता मुझसे अभी कुछ और साझा करतीं, तभी एक शख्स ने कमरे के दरवाज़े पर दस्तक दी. उस आदमी ने कविता से कहा कि उसे साहब वाली फाइलें चाहिए. पता चला कि वह सज्जन एसआई चौधरी हैं. करकरे की उस टीम के सदस्य, जो मालेगांव बम धमाकों की छानबीन कर रही थी. तब मैंने ग़ौर किया कि बगल के कमरे में और भी सात-आठ लोग थे, जो फाइलों का ढेर लिए बैठे थे. पता चला कि अदालत में चार्जशीट दाखिल करने के बाद के जिरह की तैयारी चल रही है. हेमंत करकरे ने जो नोट बनवाए थे, उनकी फाइनल ड्राफ्टिंग चल रही है. कविता पति के अधूरे काम को मुकम्मल कराने में पूरा सहयोग कर रही थी. न सिर्फ कागज़ात मुहैया करा रही थीं बल्कि पत्नी होने के नाते उनके पास जो जानकारियां थीं, उसे भी एटीएस टीम से बांट रही थीं.

मैंने भी जानना चाहा. कविता तो जैसे भरी बैठी थीं. अतीत की यातनाएं उनकी रगों में उबल रही थीं. वह जैसे फूट पड़ीं. लव मैरिज थी हमारी. हेमंत की शहादत के महज चार दिनों पहले ही हमने शादी की अट्ठाइसवीं सालगिरह मनाई थी. लजाती-सकुचाती कविता को हेमंत ने छेड़ते हुए कहा था कि शादी की 50वीं सालगिरह भी वे इसी नए-नवेले अहसास के साथ मनाएंगे. उन क्षणों को याद कर कविता की आंखों में पलाश खिल रहे थे. यह मैं साफ महसूस कर पा रही थी. हालांकि शहादत के ऐन पहले के कुछ हफ्ते हेमंत करकरे के लिए मानसिक रूप से बेहद तकलीफ़देह रहे थे. जिस दिन मुंबई पर आतंकी हमला हुआ था, उसी दिन यह ख़बर भी आई थी कि साध्वी प्रज्ञा ने एटीएस पर उन्हें निर्वस्त्र करने की धमकी देने का आरोप लगाया है. कविता बड़ी विचलित हो गई थीं. हेमंत भी व्यथित थे. परेशान कविता से उन्होंने बस यही कहा कि 'वह फिक्र न करें. साध्वी या राजनीतिक पार्टियां चाहे जो प्रलाप करें, पर एटीएस के पास उनके खिलाफ पर्याप्त सबूत हैं. एटीएस अदालत में अपने आरोपों को बखूबी साबित कर देगा. फिर वह अपने दफ्तर के लिए निकल गए थे. पूरे दिन हेमंत अपनी टीम के साथ मालेगांव बम धमाकों के आरोपियों के क़बूलनामे पर वकीलों से राय-मशविरा करते रहे, ताकि उनके गुनाहों के मुताबिक धाराएं लगाई जा सके. शाम में जब कविता को मुंबई पर आतंकी हमले की ख़बर मिली, तो कविता ने हेमंत को फोन किया. हेमंत ने बस इतना ही कहा कि 'वह स्पॉट पर हैं, बाद में बात करेंगे. और फोन कट गया. दुखद यादों की किरचें कविता को फिर से बेचैन करने लगीं. बैठे-बैठे वह पहलू बदलने लगती है. पारिवारिक तस्वीरों का अल्बम दिखाती कविता याद करती हैं उन दुखद पलों को, जब मालेगांव बम धमाकों में एटीएस द्वारा साध्वी प्रज्ञा सिंह ठाकुर की गिरफ्तारी होते ही भारतीय जनता पार्टी, विश्व हिंदू परिषद, शिवसेना, आरएसएस और बजरंग दल सरीखी पार्टियों ने स्यापा करना शुरू कर दिया. हिंदुत्व का ठेकेदार बनने की उनमें होड़ सी लग गई. साध्वी प्रज्ञा को निर्दोष साबित करने की भेड़चाल में यह दल केंद्र सरकार और मामले की तहकीकात कर रही एटीएस को ही मुजरिम ठहराने की कवायद में जुट गए. लालकृष्ण आडवाणी, नरेंद्र मोदी, बाल ठाकरे, उमा भारती आदि ने साध्वी की गिरफ्तारी को हिंदू समाज के लिए ख़तरा बताते हुए ताल ठोंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी. बगैर इस तथ्य का ख्याल रखे कि एटीएस के पास साध्वी प्रज्ञा के खिलाफ पर्याप्त और पुख्ता सबूत हैं. वहीं बैठे एटीएस के एडिशनल सीपी परमवीर सिंह चुनौती भरे अंदाज़ में कहते हैं कि ब्लास्ट के सिलसिले में पकड़े गए दयानंद पांडे ने 29 सितंबर को हुए मालेगांव विस्फोट में शामिल होने की बात कबूल की है. एटीएस ने इस बात की पूरी तरह एहतियात बरती है कि उसके बयान को अदालत से मान्यता मिल जाए. दयानंद पांडे ही वह शख्स है, जिसने साध्वी प्रज्ञा रमेश उपाध्याय आदि के कबूलनामे और उनकी निशानदेही पर हासिल किए गए साक्ष्य अदालत में सभी आरोपियों को यक़ीनन गुनहगार साबित करेंगे. सबसे बड़ी बात तो यह कि ये सभी आरोपी एक संगठित गिरोह के रूप में काम करते थे. और यही वजह है कि एटीएस ने इन सभी आरोपियों पर मकोका लगाया है. खास बात यह भी है कि सभी आरोपियों का बयान पुलिस उपायुक्त के सामने दर्ज किया गया है, जो मकोका अदालत में मंजूर भी कर लिया गया है. कर्नल पुरोहित ने कुछ अन्य आरोपियों को मिथुन चक्रवर्ती के फर्जी नाम से नांदेड़ में धमाकों के लिए जब बम बनाने की ट्रेनिंग दी थी, उस वक्त भी उसके ताल्लुकात साध्वी से थे. यह गिरोह न सिर्फ पिछले साल हुए मालेगांव बम धमाकों में शामिल था बल्कि 2006 में हुए नांदेड़ धमाकों, मालेगांव बम धमाकों, अजमेर बम धमाका, 2003 और 2004 में जालना और परभणी बम धमाकों, 2007 में पुणे के खड़की स्थित

कविता करकरे के पास अब आंसू से ज्यादा संकल्प हैं

कर्नल पुरोहित से ही साध्वी प्रज्ञा ने मध्यप्रदेश के पंचमढ़ी में अरबी और चीनी भाषा भी सीखने का काम किया. कर्नल पुरोहित ने अहमदाबाद के एक आश्रम में पांच सौ लोगों को आतंक फैलाने का प्रशिक्षण भी दिया था. चार्जशीट में दिए ब्यौरे के मुताबिक इस गिरोह का नेटवर्क भारत से बाहर कई देशों, यहां तक कि इस्लामिक देशों में भी फैला है. जहां इसके सदस्यों को दहशत फैलाने का प्रशिक्षण तो दिया ही जाता है, आर्थिक मदद भी मिलती है. चार्जशीट के मुताबिक विदेशों मे बैठे इनके साथी इन्हें दहशतगर्दी का सामान मसलन आरडीएक्स वगैरह मुहैया कराते हैं. एटीएस के पास इसके भी प्रमाण हैं कि मध्यप्रदेश के पंचमढ़ी में इन आरोपियों को आतंक फैलाने का प्रशिक्षण 2006 में 16 से 21 अक्तूबर के बीच दिया गया. एटीएस ने अपनी चार्जशीट में समझौता ब्लास्ट का भी ज़िक्र करते हुए इसी गिरोह को आरोपित किया है. हमारी बातचीत में शिरकत करते हुए एटीएस के विशेष लोक अभियोजक अजय मिश्र कहते हैं कि अगर ये सभी मकोका के तहत दोषी साबित हो जाते हैं, तो सभी आरोपियों को अधिकतम उम्रक़ैद और न्यूनतम पांच साल तक की सज़ा हो सकती है. इन आरोपियों के अपराध इतने संगीन हैं कि हमारी कोशिश होगी कि आरोपियों को ज़्यादा से ज़्यादा सज़ा मिल सके. चार्जशीट दाखिल करने के बाद भी हम इतनी मेहनत इसलिए कर रहे हैं ताकि सबूतों के जरिए हम एटीएस पर लगे तमाम आरोपों को ग़लत साबित कर सकें.

चार्जशीट में कई हैरतअंगेज खुलासे हैं... यह कहते हुए हमारी बातचीत में वहां मौजूद एटीएस के एक और आला अधिकारी भी शरीक हो जाते हैं, मगर इस निर्देश के साथ कि भूले से भी उनके नाम की चर्चा मैं न करूं. बताते हैं कि देश की मौजूदा राजनीतिक स्थिति में चार्जशीट में दिए गए तथ्यों की व्याख्या कतई नहीं की जा सकती. भारत में सक्रिय कुछ देशों की खुफिया एजेंसियों की नांदेड़ और मालेगांव बम धमाकों में क्या भूमिका रही है, इस बात की भी जांच एटीएस ने की है. कुछ भारतीय संतों और एक देश विशेष की खुफिया एजेंसी के पूर्व प्रमुखों के बीच आपसी तालमेल के भी सबूत हासिल हुए हैं. उनकी सत्यता की जांच चल रही है. जो आरोपी पकड़े गए हैं, वे सभी कटटर हिंदूवाद की आड़ में काउंटर टेरेरिज्म को स्थापित करना चाहते थे. उन्होंने एटीएस के सामने इस बात को कबूल किया है कि उनके कुछ खास देशों के धार्मिक नेताओं के साथ करीबी संबंध रहे हैं. इनके बीच लंबे वक्त से खिचड़ी पक रही थी. वजह यह कि दोनों एक दूसरे को जरिया बना कर अपने पड़ोसी मुल्कों से निपटना चाहते हैं. चूंकि इस गिरोह का नेटवर्क अभी इतना तगड़ा नहीं हुआ था कि ये मुल्क की सरहदों के बाहर जाकर तबाही मचा पाते, लिहाजा देश के अंदर ही इस गिरोह के सदस्यों ने विस्फोट के लिए वैसी जगहों को चुना, जहां इनका मक़सद कामयाब हो सकता था. वही इन्होंने किया भी. हालांकि यह गिरोह अपने विदेशी संपर्कों के बूते यह करने की फिराक में था. वैसे मालेगांव में बम विस्फोट करने के बाद इनकी योजना उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश के अलावा और भी कई संवेदनशील जगहों पर दहशत मचाने की थी. खासकर लोकसभा चुनावों के ऐन पहले यह गिरोह देश को बांटने वाली अपनी नापाक हरकतों को तेजी से अमली जामा पहनाता, पर उसके पहले ही ये सभी एटीएस की गिरफ्त में आ गए. आरोपियों की निशानदेही पर जगहों की सूची एटीएस को मिल चुकी है, जिसे वह अदालत में सबूत के तौर पर पेश करेगी.

आरोपियों से पूछताछ और नार्को टेस्ट के जरिए हिंदू आतंकवाद के बहाने जो घिनौना सच सामने आया है, वो आम हो जाए, तो शायद देश में संकट के हालात पैदा हो जाएं. हिंदू समाज का ठेकेदार बनने वाली पार्टियों को मुंह छुपाने की जगह भी न मिले, लिहाजा इन तथ्यों को लेकर बेहद गोपनीयता बरती जा रही है ताकि चुनावी माहौल में सियासी पार्टियां देश में कोई नया बखेड़ा न खड़ा कर दें.

हमारी बातचीत लगभग अंतिम पड़ाव पर पहुंच चुकी थी. घर में कुछ और लोगों की आमद-रफ्त दिखने लगी थी. कविता भी थोड़ी मसरूफ लगने लगी थीं. सारे तो नहीं, पर मेरे कुछ सवालों के जवाब तो मुझे हासिल हो ही गए थे. लिहाजा फिर मिलने की बात कह मैंने भी उनसे इजाज़त लेना मुनासिब समझा.

ruby.chauthiduniya@gmail.com

दोस्तों की खुशरंग महफिल में अलहदा अंदाज में हेमंत करकरे.

28 साल पहले शादी के मंडप में, जहां हेमंत और कविता एक दूसरे के हमदम हुए.

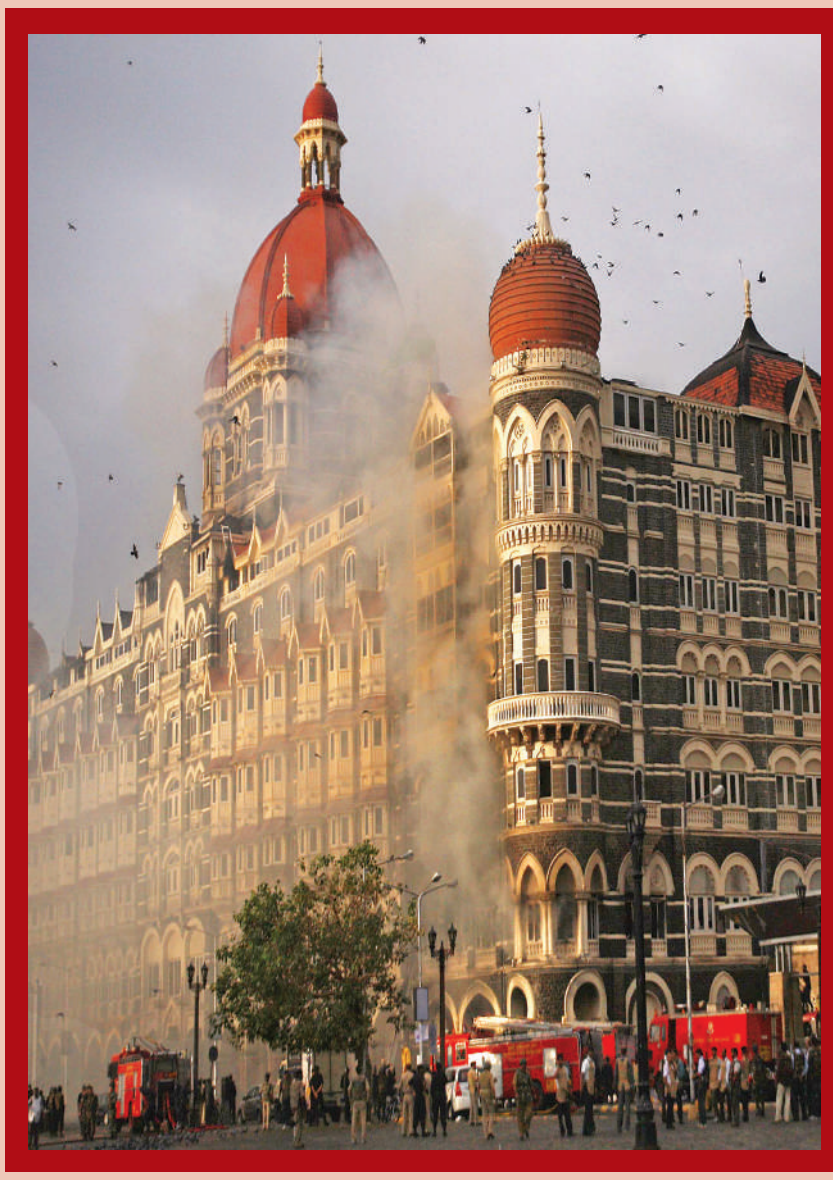

चार्जशीट में दिए ब्यौरे के मुताबिक इस गिरोह का नेटवर्क भारत से बाहर कई देशों, यहां तक कि इस्लामिक देशों में भी फैला है. देश की मौजूदा राजनीतिक स्थिति में चार्जशीट में दिए गए तथ्यों की व्याख्या कतई नहीं की जा सकती. आरोपियों से पूछताछ और नार्को टेस्ट के जरिए हिंदू आतंकवाद के बहाने जो घिनौना सच सामने आया है, वो आम हो जाए तो शायद देश में संकट के हालात पैदा हो जाएं. हिंदू समाज का ठेकेदार बनने वाली पार्टियों को मुंह छुपाने की जगह भी न मिले, लिहाजा इन तथ्यों को लेकर बेहद गोपनीयता बरती जा रही है ताकि चुनावी माहौल में पार्टियां देश में कोई नया बखेड़ा न खड़ा कर दें.

आम चुनाव में खास होगी

पूर्वांचल की सियासी बिसात

अंसारी बंधुओं को अपना उम्मीदवार बना कर बनारस से लगे गाजीपुर बलिया मऊ समेत गोरखपुर तक सपा की चुनाव से पहले ही मिट्टी पलीद कर दी है. सियासत में सब कुछ सीधा और सरल नहीं होता. लेकिन एक सीट की उम्मीदवारी से कितने समीकरण बनते बिगड़ते हैं, पंद्रहवी लोकसभा का ये चुनाव इसका गवाह होगा.

अवतंस चित्रांश

वाराणसी में बाज़ार गर्म है, चुनावी चर्चा अस्सी से लेकर पाण्डेयपुर तक आम है. कद्दावर नेता मुरली मनोहर जोशी इलाहाबाद से चल कर बनारस आए हैं चुनाव लड़ने और अब कद्दावर डॉन मुख्तार अंसारी मऊ से चल कर बनारस के चुनावी मैदान में आ गए हैं. सो, बनारस की चुनावी चर्चा जोरों पर है कि अगला सांसद कौन होगा? मुरली मनोहर, राजेश मिश्रा या मुख्तार अंसारी.

यही वजह है कि सूबे की राजनीति में दिलचस्पी लेने वाले यहां तक बता रहे हैं कि बहन जी की इस चाल से (मुख्तार के भाई अफजल अंसारी गाजीपुर से बसपा के उम्मीदवार हैं) मुलायम सिंह का सारा चुनावी गणित गडबड़ा गया है. दरअसल चुनावी पंडितों का कहना है कि इससे पूरे पूर्वांचल में मुस्लिम वोटों पर असर पड़ेगा जबकि परमाणु डील और उसके बाद कल्याण सिंह को पार्टी में शामिल करने के बाद से ही समाजवादी पार्टी का ग्राफ मुसलमानों में पहले ही गिर चुका था, उस पर बहन जी ने अंसारी बंधुओं को अपना उम्मीदवार बनाकर बनारस से लगे गाजीपुर बलिया मऊ समेत गोरखपुर तक सपा की चुनाव से पहले ही मिट्टी पलीद कर दी है. सियासत में सब कुछ सीधा और सरल नहीं होता. लेकिन एक सीट की उम्मीदवारी से कितने समीकरण बनते बिगड़ते हैं, पंद्रहवी लोकसभा का ये चुनाव इसका गवाह होगा.

भारत की सांस्कृतिक राजधानी बनारस में कोई भी आम चुनाव आम नहीं रहा है. इस बार के चुनाव की सरगर्मी भी चुनावी पंडितों के लिए सरदर्दी से कम नहीं है. ये और बात है कि चुनावी चटखारे लेने वाले डॉ जोशी को इसका सीधा फायदा बता रहे हों और कांग्रेस के राजेश मिश्रा को एंटी इनकंबैंसी, मुस्लिम वोट कटने की वजह से हारता हुआ दिखा रहे हों या फिर मुख्तार के चुनावी बिगुल के सामने दोनों उम्मीदवार बेदम दिखते हों, क्योंकि दोनों ही ब्राह्मण हैं. ऐसे में इसका फायदा मुख्तार को मिलता दिख रहा है. एक और समीकरण है कि राजेश मिश्रा के खिलाफ दोनों ही उम्मीदवार बाहरी हैं, इसलिए बनारस के लोग मिश्रा के साथ हैं.

लेकिन चुनावी चकल्लस के अलावा देखें तो मामला संगीन नज़र आता है, क्योंकि ये बनारस है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार का केंद्र है और अरसे से माफिया के निशाने पर रहा है. अस्सी के शुरुआती वर्षों से चली आ रही दो गिरोहों की खूनी लड़ाई अब मुख्तार और बृजेश सिंह के बीच है. माफिया डॉन बृजेश सिंह कई नाटकीय कारनामों

मुख्तार अंसारी के भाई अफजल अंसारी.

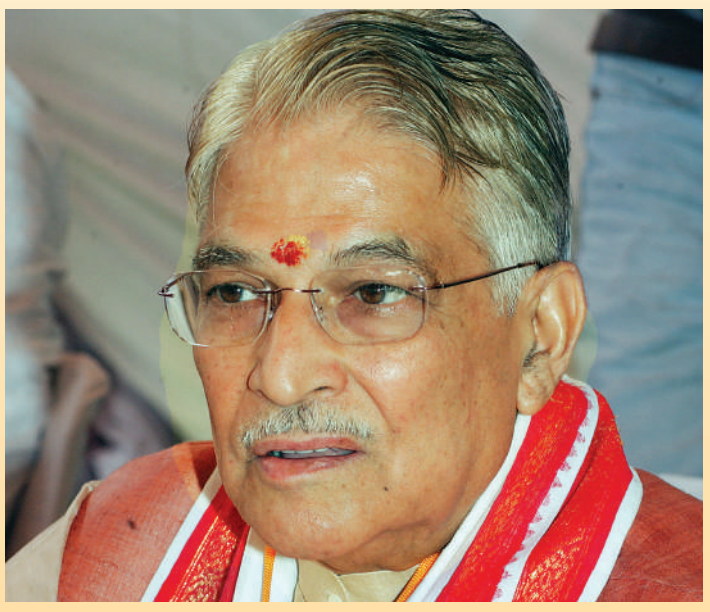

बीजेपी के वरिष्ठ नेता मुरली मनोहर जोशी.

(अपनी मौत की भी) के बाद यहां की सेंट्रल जेल में हैं. मुख्तार अंसारी बनारस से लोकसभा जाने की तैयारी कर रहे हैं. इसीलिए ये चुनाव संगीन है क्योंकि पूर्वांचल के अपराध जगत को जानने वालों के लिए राजनीति सिर्फ मौके की बात है, असल लड़ाई तो कुछ और है.

मुख्तार ने एक समय तक कभी बनारस की हद में दखल नहीं दी. नब्बे के दशक के आखिर वर्षों में तो इस इलाके में बृजेश की तूती बोलती थी, जो चंदौसी के कोयला मंडी से लेकर धनबाद के स्क्रैप बाज़ार तक जा पहुंची. इसी दौरान बृजेश सिंह के एक ख़ास सिपहसालार कृष्णानंद राय ने अपनी धमक बना ली. बीएचयू छात्रसंघ के पूर्व महामंत्री राय गाजीपुर के मोहम्मदाबाद के रहने वाले थे, जहां के मुख्तार हैं. बनारस से कारोबार संभालने वाले कृष्णानंद राय ने मुहम्मदाबाद से विधानसभा चुनाव लड़ा और न सिर्फ मुख्तार के भाई अफजल अंसारी को शिकस्त दी बल्कि जानकार बताते हैं कि राय की किलेबंदी ने मुख्तार को चुनाव के दिन उसी के गांव में घुसने नहीं दिया. यही वक्त था, जब मुख्तार की नज़र बनारस पर पड़ी. राय जानते थे कि शेर को उसकी मांद में घुस कर ललकारने का मतलब क्या होता है? लिहाजा उन्होंने लखनऊ से लेकर गाजीपुर के उसरी चट्टी तक मुख्तार पर ताबड़तोड़ हमले कराये लेकिन संयोग कि मुख्तार हर बार बच निकले और कृष्णानंद राय को इसकी कीमत अपनी जान गंवा कर देनी पड़ी. इधर बृजेश की मौत की ख़बर भी जोरों पर रही और मुख्तार के गिरोह के मुन्ना बजरंगी के नाम पर सूमचा बनारस कांप रहा था. जेल से

लोकसभा में वाराणसी से मुरली बजेगी या चलेगी बंदूक?

शार्प शूटरों की गोली आए दिन किसी न किसी की जान ले रही थी. मुख्तार अब बनारस पहुंच चुके थे.

इस बार ब्राह्मण बहुल कोलअसला के विधायक अजय राय की ज़ोरदार मांग को दरकिनार करते हुए भाजपा ने मुरली मनोहर को बनारस से अपना उम्मीदवार बना दिया. अजय राय पर पिछले चुनाव में राजेश मिश्रा को समर्थन देने का आरोप भी है. अजय राय राजनाथ सिंह के खेमे के हैं और आज बनारस के युवाओं में अपनी खासी पैठ रखते हैं. अजय राय के बड़े भाई अवधेश राय की हत्या का आरोप मुख्तार अंसारी पर है. दूसरी तरफ बृजेश सिंह भी बनारस सेंट्रल जेल में हैं, जिनके भाई उदयनाथ सिंह चुलबुल और भतीजे सुशील सिंह समेत सैकड़ों समर्थक मुख्तार के खिलाफ हैं. महज तीन साल पहले शुरू हुई मुख्तार-मिश्रा के बीच अदावत में बृजेश गिरोह राजेश मिश्रा के साथ रहा है. ऐसे में दोनों का एजेंडा साफ है, मुख्तार को हराना है. साफ है कि आने वाला समय बनारस की सड़कों पर खूनी इबारत लिख सकता है. मुख्तार के लिए बड़ा सिरदर्दी वोटों के ध्रुवीकरण का है. जो न हो, तो मुश्किल और हो, तो मुश्किल क्योंकि अल्पसंख्यक समुदाय मुख्तार के पक्ष में गोलबंद होता नज़र आ रहा है. वाराणसी में अल्पसंख्यकों के प्रमुख सरदार मकबूल हसन ने साफ़ शब्दों में कहा कि मुसलमान मुख्तार का ही समर्थन करेंगे. कांग्रेस के राजेश मिश्रा को मुसलमान वोट नहीं देंगे. अन्य प्रमुख मुस्लिम सरदारों ने नाम न प्रकाशित करने की शर्त पर कहा कि मुस्लिम समुदाय में आज की तारीख में अस्सी से नब्बे फीसदी तक लोग कांग्रेस से दूर हो गए हैं और वह बसपा के मुख्तार अंसारी के साथ गोलबंद हो गए हैं. बस मुख्तार के लिए यही मुश्किल का सबब है. इस तरह की एकतरफा गोलबंदी से वाराणसी का यह चुनाव हिंदू बनाम मुस्लिम का चुनाव हो जाएगा और ऐसे में उन्हें नुकसान होगा. और इस नुकसान का फायदा आखिरी वक्त में जिसको होगा, मुख्तार के विरोधी बाहुबली गिरोह उसके साथ होंगे. अब चाहे वो डॉ मुरली मनोहर जोशी हों या फिर राजेश मिश्रा. लेकिन इतना तो तय है कि बनारस का चुनाव आम नहीं होगा.

बनारस के बहाने समूचे पूर्वांचल की राजनीति का गणित नतीजों के बाद समझ में आएगा, क्योंकि गोरखपुर में सपा के मनोज तिवारी के ख़िलाफ़ बाहुबली हरिशंकर तिवारी के बेटे विनय शंकर तिवारी को बसपा उम्मीदवार बनाना तो भाजपा के योगी आदित्यनाथ के ख़िलाफ़ कांग्रेस के एक महंत को खड़ा करने की ख़बर, उधर चंदौली में बसपा के सांसद कैलाश नाथ यादव के खिलाफ मुगलसराय के विधायक रामकिशुन यादव को उम्मीदवार बना कर मुलायम सिंह और मायावती ने अपने-अपने इरादे जाहिर कर दिए हैं. अब आप समझें या ना समझें, चुनावी बिसात सामने है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

साले की अदावत

लालू की मुसीबत

सियासत में सब कुछ सीधा और सरल नहीं होता. लेकिन एक सीट की उम्मीदवारी से कितने समीकरण बनते-बिगड़ते हैं, पंद्रहवी लोकसभा का ये चुनाव इसका गवाह होगा.

राजद अध्यक्ष लालू यादव हलकान हैं. परेशान हैं. उनकी पार्टी के साथ-साथ उनके घर में भी भगदड़ मची है. जोरू का भाई नाराज़ हो गया है. राजद से टिकट न मिलने से ख़फ़ा साले साधु यादव ने पार्टी तो बदल ही ली है, अब घर का भेदी बन लालू की लंका ढाहने की तैयारी में भी लग गए हैं. हालांकि दोनों के रिश्तों के बीच खटास पिछले बिहार विधानसभा चुनाव में उस वक्त आ गयी थी, जब लालू ने साधु की पत्नी इंदिरा देवी को गोपालगंज से टिकट नहीं दिया था. तब साधु ने अपनी पत्नी को निर्दलीय मैदान में उतार दिया था. पर पारिवारिक अनबन ने रंग दिखाया और इंदिरा देवी चुनाव हार गयीं.

जाहिर तौर पर लालू ज़रूर ये कह रहे हैं कि आया राम गया राम हर पार्टी से फिल्टर हो कर निकल रहे हैं. कांग्रेस में चुनाव लड़ने वाले व्याकुल लोगों की भरमार हो गयी है. हर व्यक्ति की राजनैतिक भूख बढ़ गयी है. उन्हें भूख मिटाने दीजिए. पर लालू की पेशानी पर बल तो हैं ही. हमेशा तानाशाही अंदाज़ में मीडिया से रूबरू होने वाले राजद अध्यक्ष अब मीडिया से बच कर निकल रहे हैं. उनकी अपनी ही थाली में छेद जो हो गया है. जिससे और भी विक्षुब्धों के फिसल कर निकलने की गुंजाइश दिख रही है. बांका से मौजूदा सांसद गिरधारी यादव ने पहले ही कांग्रेस का दामन पकड़ लिया है. जहानाबाद से निर्वतमान सांसद गणेश प्रसाद यादव टिकट न मिलने के कारण अलग भड़के पड़े हैं. साधु की बगावत ने कई और विक्षुब्धों को राह दिखा दी है. साधु के साथ राजद के प्रखर नेता रमई राम भी निकल लिए हैं. ख़बर है कि कतार में कई और भी हैं. कांग्रेस का हाथ पकड़ने के बाद साधु दावा कर रहे हैं कि उनके साथ राजद के ऐसे कई नेता हैं, जिनके पार्टी छोड़ने से राजद धराशायी हो जाएगा. हालांकि इस धमकी के साथ-साथ साधु अपनी राबड़ी दीदी के परिवार का पूरा सम्मान करने का भी दावा करते हैं. पर अपना दर्द जाहिर करने से भी नहीं चूकते कि बेतिया से उन्हें टिकट न देकर उनके घर वालों ने ही उन्हें पार्टी से बाहर कर दिया है. अब साधु अपने जीजा जी को पटखनी देने पूरे दम-खम से अखाड़े में कूद पड़े हैं. पाला बदलते ही साधु न सिर्फ हसीन सपने देखने लगे हैं बल्कि कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी को दिखाने भी लगे हैं. उन्होंने दावा किया है कि बिहार में अगली सरकार कांग्रेस की ही होगी. चलिए, खुशफ़हमी के लिए ग़ालिब ये ख्याल अच्छा है.

साधु की खिलाफ़त की चर्चा चलने पर लालू दर्शन बघारते हैं कि

बीमारी हो गयी थी, इसलिए कड़वी दवा पीनी ज़रूरी थी. पर यह कड़वी दवा लालू के हलक में अटक गयी है. जो न उगलते बन रही है, न निगलते. पर ये नौबत आई ही क्यों लालू जी. बीमारी को नासूर तो आपने ही बनाया था. कभी वो वक्त भी था कि लालू यादव ने अपने साले साधु यादव के लिए सारी खुदाई एक तरफ रख दी थी. बिहार के राजनैतिक और सामाजिक परिवेश में साधु यादव ने अपनी उद्दंडता से हलचल मचा दी थी. लालू विरोधियों के आरोपों से चौतरफा घिरे थे, पर अपने सालों साधु, सुभाष और प्रभुनाथ के पर कतरना उन्हें मंजूर नहीं था. दुनिया जानती है लालू के मुख्यमंत्री रहते उनके सालों का जलवा. लालू के जेल जाने के बाद जब राबड़ी देवी मुख्यमंत्री बनीं तो साधु यादव को छाया मुख्यमंत्री कहा जाता था. सूबे के हुक्मरानों पर उनकी तूती बोलती थी. गोपालगंज से राजद के विधायक और दो बार सांसद रह चुके साधु इस बार बेतिया से टिकट चाह रहे थे. पार्टी के कई और विधायक भी सांसद बनने के सपने संजोने लगे थे. लालू-राबड़ी पहले ही परिवारवाद के आरोप से त्रस्त थे. अब पार्टी में साधु की बढ़ती पकड़ और दखलअंदाज़ी ने उनकी नींद ख़राब कर दी थी. यही मौका था जब लालू, साधु को उनकी औकात बता सकते थे. उन्होंने एक तीर से दो शिकार किए. साधु को उनकी औकात भी बता दी और टिकट के दावेदारों को ख़ामोश भी करा दिया.

हालांकि एक चर्चा ये भी है कि ये मनमुटाव, नोंक-झोंक तो बस दिखावा है. इसके पीछे भी तगड़ी राजनीति है. दलील ये कि लालू यादव चाहते हुए भी साधु को केंद्रीय मंत्री नहीं बनवा सके. लिहाजा उनकी ही सलाह पर साधु ने कांग्रेस का पाला पकड़ा है. ताकि अगर अगली दफा यूपीए की सरकार बने, तो बगैर किसी वाद-विवाद और लांछन के वे अपने साले को केंद्रीय मंत्री बनवा सकें.

इस बात में कितना दम है, यह बताना फिलहाल मुश्किल है. पर एक बात जो साफ-साफ दिख रही है, वो ये कि बिहार में टिकट बंटवारे के मसले पर हुई बेइज्ज़ती से नाराज़ सोनिया गांधी लालू के ख़िलाफ़, साधु का पूरा इस्तेमाल करने के मूड में हैं. अब साधु, लालू को कितना नुक़सान पहुंचाएंगे, यह तो पता नहीं, पर अगर उन्होंने बेतिया लोकसभा सीट जीत ली, तो फायदा हर हाल में उनका है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मेरी दुनिया.... ...धीर

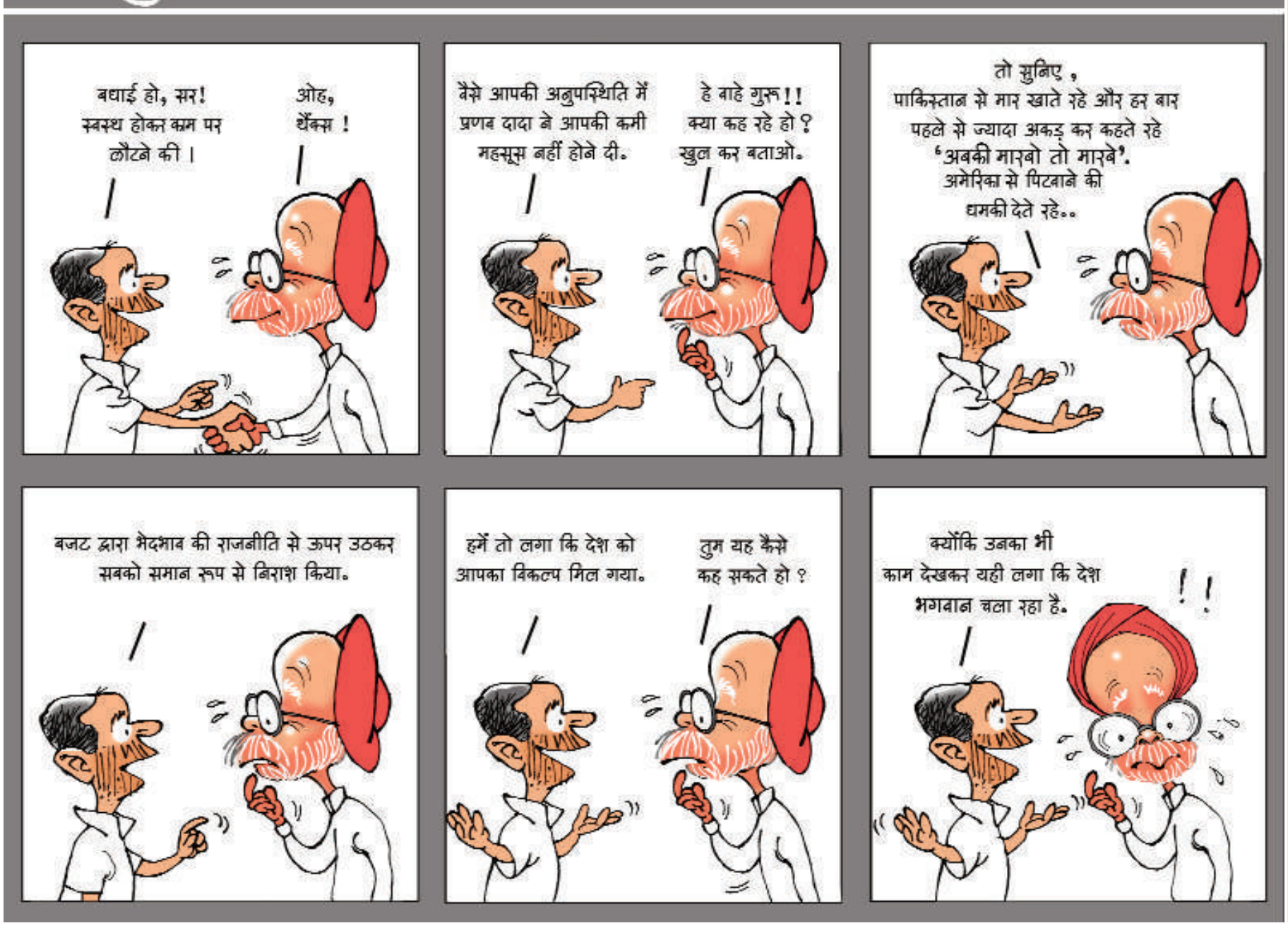

मायावी गणित से गहराएगा पंद्रहवीं लोकसभा का असमंजस

तस्वीर : प्रभात पांडेय

परिदृश्य 1

क्या इस बार असली लड़ाई कांग्रेस और तीसरे मोर्चे की है? भाजपा की तैयारी सही नहीं है ऐसे में क्या तीसरा मोर्चा कांग्रेस के विपक्ष की भूमिका निभा पाएगा? क्या तीसरे मोर्चे को कांग्रेस से ज्यादा सीटें मिलेंगी?

संभावित प्रतिशत : तीसरे मोर्चे में कई घटक ऐसे जुड़ेंगे, जिनके मिलने से उसकी छवि पर गलत प्रभाव पड़ेगा. लेकिन अगर यह गठजोड़ टिका रहा तो चुनाव के बाद तीसरे मोर्चे के आंकड़े कांग्रेस से ज्यादा हो सकते हैं.

परिदृश्य 2

क्या भाजपा के अंतर्कलह और मुद्दाविहीन होने से कांग्रेस सबसे बड़ा दल बन कर उभरेगी. क्षेत्रीय दलों के साथ आने की कोशिशों के बाद कांग्रेस तीन सौ पचास से ज्यादा सीटों पर चुनाव नहीं लड़ेगी जिनमें उत्तर प्रदेश में सत्तर सीटें शामिल हैं. ताजा रिपोर्टों के अनुसार तीसरा मोर्चा तीन सौ से कम सीटों पर, जबकि बसपा की मायावती के अनुसार उनकी पार्टी सभी पांच सौ तैंतालिस सीटों पर टक्कर देगी. लेकिन ऐसा हो सकता है कि उन्हें ज्यादा सीटों पर उम्मीदवार ही न मिले.

संभावित प्रतिशत : ऐसा तभी हो सकता है, जब मायावती को कई और नए उम्मीदवार मिल सकें.

आजाद भारत की कुंडली

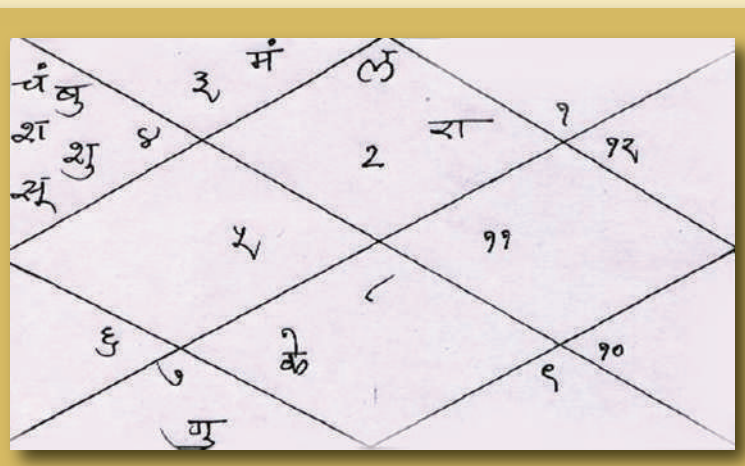

परिदृश्य 9

भाजपा को 130-140 सीटें मिलने और कांग्रेस के 100-110 सीटों पर सिमटने से क्या भाजपा तीसरे मोर्चे में सेंध मार कर एनडीए में इजाफा कर नई सरकार बना सकती है?

संभावित प्रतिशत : भाजपा को कड़े विरोध का सामना करना पड़ेगा. तीसरे मोर्चे को तोड़ने के लिए उसे महत्वपूर्ण समझौते करने पड़ेंगे.

परिदृश्य 7

कांग्रेस के केवल 130-140 सीटें पाने की दशा में और अनुमानत: भाजपा को 110 सीटें मिलने पर क्या नई लोकसभा में 293 गैरकांग्रेसी और गैरभाजपाई सदस्य एक साथ नया गठजोड़ बना सकता है और अधिकतम राजनीतिक लाभ ले सकते हैं ?

संभावित प्रतिशत : अगर यह नया गठजोड़ स्थिर रहे, हालांकि इस गठजोड़ के लंबे समय तक चलने की संभावना कम है.

परिदृश्य 3

तमाम दलों के नेता इस समय सवाल उठा रहे हैं कि परिसीमन के बाद सीटों का हिसाब-किताब बदल गया है, अनुसूचित जाति और जनजाति की सीटें बढ़ गयी हैं. अनारक्षित सीटों पर भी समीकरण बदल गए हैं. क्या इसका इस बार के चुनाव पर बड़ा प्रभाव पड़ेगा?

संभावित प्रतिशत : हां, इसका प्रभाव पड़ेगा और अधिकतर दल अपनी हार का ठीकरा इस परिसीमन पर ही फोड़ेंगे.

परिदृश्य 6

यदि भाजपा और कांग्रेस संयुक्त रूप से लोकसभा में आवश्यक बहुमत – 273 सीट तक नहीं पहुंच पाते हैं, तो गति तीसरे मोर्चे के साथ होगी. दूसरे शब्दों में, अगर दोनों दल मिला कर 273 सीट के नीचे रह जाते हैं, तो 15वीं लोकसभा के ज्यादातर सदस्य गैरभाजपाई-गैरकांग्रेसी होंगे.

संभावित प्रतिशत : संभावना मज़बूत है.

परिदृश्य 4

क्या चुनाव में प्रिंट और टीवी मीडिया ऐसी ताकत होंगे, जिनका अंदाजा लगाना असंभव है? राजनीतिज्ञ महसूस करते हैं कि जब कोई विवाद उठता है, तो मीडिया को प्रभावित करने की कोशिश के बावजूद उसे रोका नहीं जा सकता बल्कि मीडिया किसी एक मुद्दे को उठा कर पार्टियों की संभावनाओं को बिगाड़ देती है.

संभावित प्रतिशत : करीब चालीस प्रतिशत

परिदृश्य 8

यदि कमजोर वैकल्पिक मोर्चे की सरकार सत्ता में आती है तो क्या कांग्रेस पार्टी इसे राहुल गांधी की अगुवाई में खुद की स्थिति मजबूत बनाने के नए अवसर के रूप में देख सकती है ?

वजह – राहुल गांधी एक स्थिर कांग्रेसी सरकार या कांग्रेस प्रभावी गठबंधन के प्रधानमंत्री हो सकते हैं?

संभावित प्रतिशत : हां, कांग्रेस में इस बात को जोरदार समर्थन मिल सकता है.

परिदृश्य 10

तीसरे मोर्चे की सरकार कमज़ोर हो सकती है क्योंकि इसे कांग्रेस का सहयोग चाहिए, लेकिन अगर वाम मोर्चा ठीक चुनाव बाद तीसरे मोर्चे को टूटने से बचा पाता है, तो कांग्रेस को सरकार बनाने के लिए महंगे समझौते करने पड़ सकते हैं, जो नई सरकार को और कमजोर करेगा. यह कितना संभव है?

संभावित प्रतिशत : इसकी संभावना कम है कि कांग्रेस इस तरह के महंगे समझौते करेगी.

परिदृश्य 5

यदि तीसरा मोर्चा सबसे बड़े गठजोड़ के रूप में उभरता है, तो कांग्रेस को दलों को विभाजित करके नया गठजोड़ बनाने में तकलीफदेह कवायद करनी होगी. यह कितना संभव है?

संभावित प्रतिशत : कांग्रेस नर्म रवैया अपना सकती है.

परिणाम उम्मीदों से परे होगा. एक त्रिशंकु संसद के उभरने के संकेत इस बात से मज़बूत हो रहे हैं कि कोई गठबंधन ज्यादा दिन नहीं टिकेगा. आडवाणी प्रधानमंत्री पद के तगड़े दावेदार होंगे, लेकिन विपक्ष से पार पाना लगभग असंभव होगा. विपक्ष पर विजय तभी संभव होगी, जब भाजपा उत्तर प्रदेश में उम्मीद से बेहतर प्रदर्शन करे और इसके तगड़े संकेत हैं कि पार्टी उम्मीद से बेहतर कर सकती है. क्योंकि मतदाता के कई समूह मायावती की अगुवाई वाली बसपा और मुलायम की सपा, दोनों से असंतुष्ट हैं. लेकिन उन्हें अपने सहयोगी दलों के विरोध से दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा. सोनिया गांधी की चुनाव के पहले और बाद में, पहले की तरह सक्रिय भूमिका नहीं होगी, जबकि मायावती पहले से ज़्यादा अहम साबित होंगी और उनके पास अपनी स्थिति बनाने के लिए रणनीति है. मायावती के संदर्भ में क्षेत्रीय दलों और उनके सितारों के उभरने से मायावती का राष्ट्रीय स्तर पर उभरना अवश्यंभावी है. मायावती की पहली दलित प्रधानमंत्री बनने की इच्छा अब कोई रहस्य नहीं है. लेकिन क्या इस बार वह वहां तक पहुंच पाएंगी? राष्ट्रीय स्तर पर उनके उभरने की असल कुंजी उनकी आक्रामक प्रवृत्तियों से अधिक अपनी महत्वाकांक्षा के लिए छोटे से छोटे अवसरों की पहचान कर उनका उपयोग करने की उनकी कुशलता है. मायावती नई राजनीतिक ताकत के रूप में उभर रही हैं लेकिन आगे कई चुनौती भरे मोड़ों से गुजरेंगी. संयोग से वह भारत के सबसे अधिक जनसंख्या वाले राज्य यूपी की चार बार मुख्यमंत्री रही हैं, जो सबसे ज्यादा जंगलराज और भ्रष्टाचार के लिए जाना जाता है, उनका यह अनुभव उन्हें फायदा देगा. निस्संदेह जो लोग सितारों में भरोसा नहीं करते हैं, तर्क में विश्वास रखते हैं, वे कहेंगे कि मायावती की पार्टी के लिए उस उत्तर प्रदेश से बाहर जगह बनाना कठिन काम होगा, जो भारत में संसद की सबसे ज्यादा सीटें देता है. लोग मानते हैं कि भारतीय राजनीति में उनका क्षेत्रीय और जातीय समीकरण अन्य राज्यों में सफल नहीं होगा. मायावती की पार्टी की तरह की क्षेत्रीय पार्टियां सामान्यत: शक्ति संतुलन अपने हाथ में रखती हैं न कि देश का नेतृत्व करती हैं. लेकिन एक समय और दिन ऐसा आएगा, जब मायावती ऐसे पूर्वानुमान को ग़लत साबित करेंगी. उनका सर्वोच्च पद पर बने रहना समस्याओं से भरा गैरआरामदेह और ज्यादा देर तक टिकने वाला नहीं होगा. दक्षिण के राज्यों में भाजपा कर्नाटक में कमोबेश मज़बूत स्थिति में रहेगी. आंध्र में कांग्रेस सत्यम घोटाले के खुलासे और चिरंजीवी के नई पार्टी बना लेने से संभवत: सीटें खो सकती है. इसका यह मतलब नहीं है कि चिरंजीवी निश्चित ही कांग्रेस के वोट बैंक में सेंध लगा देंगे, लेकिन उनको ज्यादा सीटें मिलेंगी और रही बात राहुल गांधी की, तो अभी उन्हें इंतज़ार करना होगा.

ज्योतिषीय अनुमान के अनुसार लोकसभा 2009 का परिणाम घमासान में तब्दील हो सकता है, लेकिन कुछ चीजें साफ हैं :

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

अतुलनीय थी

चंद्रशेखर की विश्वसनीयता

जिस दौर में मैं राजनीति में आया, उस समय के बड़े नेताओं में चंद्रशेखर जी का नाम था. उनकी राजनीति और व्यक्तित्व में कई विशेषताएं थीं. वे अलग तरह के राजनेता थे. उनके इस अलग अंदाज़ पर ही उन्हें युवा तुर्क कहा जाने लगा. वह राजनीति में वह अपनी सोच पर डटे रहे. एक सांसद के तौर पर वह निष्पक्ष रहे, तो प्रधानमंत्री के तौर पर ईमानदार रहे. मुझे जो सबसे बड़ी खासियत चंद्रशेखर जी की याद आती है कि वह समस्याओं का समाधान जानते थे. किसी भी समस्या पर जब कोई चर्चा होती थी, तो वह उसको उलझाना नहीं बल्कि उसका समाधान चाहते थे. उनका प्रयास उस समस्या को मिटाने में होता था, उससे कोई लाभ कमाने का नहीं. इसलिए उनकी विश्वसनीयता राजनीति का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, दोनों में बनी हुई थी. उन्होंने कभी पद का गुमान नहीं किया, उपाधियां प्राप्त कीं लेकिन उनका घमंड नहीं किया. बिल्कुल सादगी का जीवन बिताया.

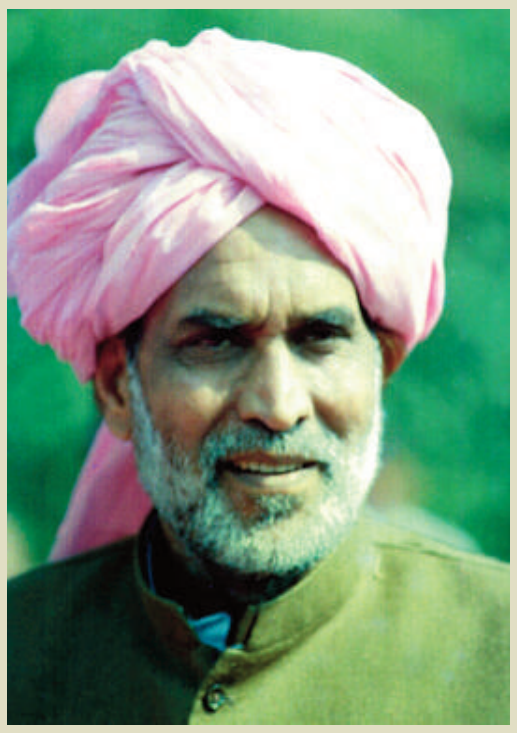

राजनीति में उनकी विश्वसनीयता देखें, तो यह बात सब जानते थे कि वह कितने विश्वसनीय राजनीतिज्ञ रहे. राजनीति में जीवन भर वह आम आदमी की तरह रहे, न नेता न प्रधानमंत्री, बल्कि आम आदमी ही रहे. आम आदमी से जो उनका संबंध था, वह बेजोड़ था. राजनीति के अधिकतर लोगों से भी उनका इसी प्रकार का संबंध रहा. उनके बारे में यह माना जाता था कि कोई भी आदमी बिल्कुल स्वतंत्र होकर अपने दुख-दर्द की बात उनसे कर सकता है और वह उसका यथासंभव समाधान करने की चेष्टा करते थे. यह उनके व्यक्तित्व की खासियत थी.

भैरोसिंह शेखावत

feedback.chauthiduniya@gmail.com

वे भारतीय राजनीति की

बेमिसाल शख्सियत थे

चंद्रशेखर जी की यादों का एक ऐसा सिलसिला मेरे सामने है, जिसकी चर्चा थोडे वक्त और चंद वाक्यों में मुमकिन नहीं. मुझे याद है, जब चंद्रशेखर जी से मेरी पहली मुलाकात हुई थी, वह सन 1968 का साल था. उस दौरान वह पब्लिक अकांउट्स समिति के मेंबर थे. मेरे चाचाजी उन दिनों उस समिति के अध्यक्ष हुआ करते थे. जब वह मुंबई आये थे, तो हमारे घर ही ठहरे. मुझे उनके साथ रहकर उनकी देखभाल का जिम्मा मिला. तभी पहली मुलाकात में मैं उनके नजदीक आया. उन्हीं दिनों मैं कॉलेज से नया-नया निकला था. करीब 20-22 साल की उम्र थी. चंद्रशेखर जी ने उन दिनों बिड़ला समूह की कंपनियों की मनमानी और अवैध कामों के खिलाफ आवाज उठाई थी. मैं उनके इस तेवर से काफी प्रभावित हुआ था. मैंने देखा कि वह एक ऐसे नेता थे, जिनमें बड़े-बड़े घरानों से टक्कर लेने का साहस था.

मैं भी कॉलेज से नया-नया निकला था. मेरे अंदर क्रांतिकारी भावना कुलांचे भर रही थी. मैं उनके इस कमाल के साहस का प्रशंसक बन गया. मुझे लगा कि यही एक नेता है, जिनके साथ चला जा सकता है. तभी से वह मेरे नायक बन गये.

जिस समय मैं उनसे मिला वह दौर भारतीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण दौर था. 1969 में बैंकों का राष्ट्रीय-करण हुआ. मैं इस बात का बड़ा समर्थक था. मुझे लगता था कि पूरी संपत्ति का केवल कुछ घरानों में जमा रहना गलत है. यही वह समय था, जब अपने नए विचारों के दम पर चंद्रशेखर जी की पहचान युवा तुर्क की बन चुकी थी. उन्होंने बैंकों के राष्ट्रीयकरण, रजवाड़ों की पेंशन के मुद्दे पर आवाज उठायी थी. कई मुद्दों पर हमारी समझ एक जैसी थी. समाजवाद हम दोनों का सपना था और यही वजह थी कि हम एक दूसरे के नजदीक होते चले गये.

उसके बाद घटनाक्रम तेजी से बदला. पहले गरीबी हटाओ का नारा देकर इंदिरा गांधी फिर सत्ता में आईं. फिर 1975 में आपातकाल लग गया. इस दौरान उन्हें जेल में बंद कर दिया गया. जब 1977 में वह जेल से वापस लौटे तो मैं उनका हमकदम हो गया. उनसे कभी अलग न होने के संकल्प के साथ मैं उनसे सक्रिय रूप से जुड़ गया.

चंद्रशेखर जी के व्यक्तित्व से कई बातें मैंने सीखीं. वह जयप्रकाश नारायण और आचार्य नरेन्द्रदेव से प्रभावित थे. उनकी समाजवादी विच-रधारा को मैंने भी जीवन में अपनाया. विचारधारा से भी अधिक उनसे जो बातें मैंने ग्रहण की, वह आचरण से जुड़ी थीं. चंद्रशेखर जी कहा करते थे कि हर बात को सुनना चाहिए, लेकिन हर बात पर बोलना जरूरी नहीं है. यह सहनशीलता मैंने उन्हीं से सीखी. उनका कहना था कि लोगों को जोड़ो, तोड़ो मत. चंद्रशेखर जी से व्यक्तिगत तौर पर बहुत जुड़ाव रहा. उन्होंने मुझे हमेशा परिवार के सदस्य के रूप में समझा. वह मुझसे खुल कर बातें कर पाते थे. उनका मुझ पर यह भरोसा था कि मैं उनकी बातों पर बेबाक राय दूंगा.

चंद्रशेखर जी में एक राजनेता के तौर पर जो सबसे बड़ी खासियत थी, वो थी उनकी सच्चाई. राजनीतिक लाभ के लिए उन्होंने कभी अपने सिद्धांतों से समझौता नहीं किया. मुझे सिख आंदोलन का समय याद है. उस समय चंद्रशेखर जी ने कहा कि सिखों को अलग करने से भारत कमजोर होगा. उस समय अधिकांश भारत में जो सोच थी, चंद्रशेखर जी का यह स्टैंड ठीक उसके उलट था. इसका साफ मतलब था आम चुनावों में हार. हार हुई भी, लेकिन चंद्रशेखर जी ने अपनी सोच से समझौता नहीं किया.

संसद में उन्हें एक निष्पक्ष और प्रभावशाली वक्ता के रूप में याद किया जाएगा. उनके बारे में कहा जाता है कि वह जब किसी दल या मुद्दे के विपक्ष में बोलते थे तो इसका मतलब यह नहीं था वह उसके विरोधियों के पक्ष में बोल रहे हैं. शायद यही वजह भी है कि सभी उन्हें सुनना पसंद करते थे.

आज की राजनीति में किसी को पल में भूल जाना कोई बड़ी बात नहीं है. ऐसे में आने वाले दिनों में चंद्रशेखर जी को किस तरह याद किया जाएगा, यह कहा नहीं जा सकता. शायद उन्हें कम कार्यकाल के प्रधानमंत्री के रूप में याद रखा जाए, लेकिन समाजवाद के एक बडे नेता के रूप में तो जरूर ही याद रखा जाएगा. साथ ही, और बारीकी से उनका मूल्यांकन किया गया, तो उन्हें भारतीय राजनीति की एक बेमिसाल शख्सियत के रूप में याद किया जाएगा.

कमल मोरारका

feedback.chauthiduniya@gmail.com

उनके साथ सच और साहस की राजनीति चली गई

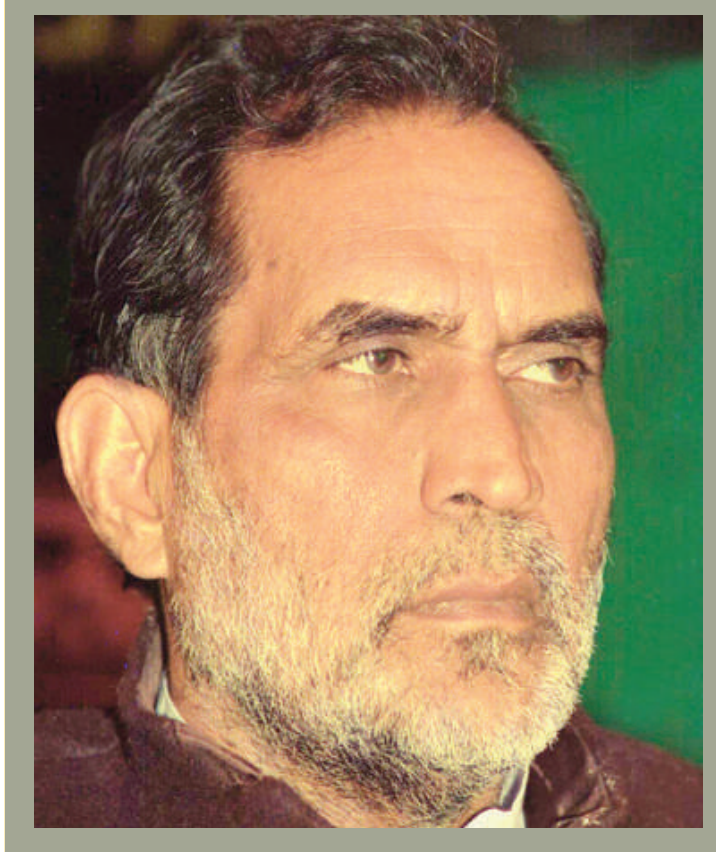

चंद्रशेखर जी प्रधानमंत्री का पद भी ठुकराने की ताकत रखने वाले नेता थे. मुझे याद है कि जब वह प्रधानमंत्री थे और राजीव गांधी चंद्रशेखर जी से बात करना चाहते थे, चंद्रशेखर उनसे बात नहीं कर रहे थे. एक बार तो मैंने भी उनसे कहा कि आप उनसे बात क्यों नहीं कर लेते. उनका जवाब था कि चंद्रशेखर तो किसी से भी बात कर सकता है, लेकिन भारत का प्रधानमंत्री छद्म तरीके से और समझौते कर देश को चलाए, यह मुमकिन नहीं.

जब भी चंद्रशेखर जी के बारे में सोचता हूं, तो उनके बारे में जो सबसे पहली बात याद आती है, वह है उनकी सच्चाई और ईमानदारी. मौजूदा दौर के वे अकेले ऐसे नेता रहे, जिन्होंने सच बोलने में कभी हिचकिचाहट नहीं दिखायी. चाहे कांग्रेस में रहते हुए भी जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी का विरोध हो या ऑपरेशन ब्लूस्टार, उन्होंने हर मुद्दे पर सच बोलने की हिम्मत दिखाई. साथ ही वह परिणाम झेलने को भी हमेशा तैयार रहे. सत्ता की चमक से बेअसर रह कर सच का साथ देने के उनके इसी तेवर ने उनको युवा तुर्क की उपाधि दिलवायी. जयप्रकाश नारायण की गिरफ्तारी के खिलाफ वह जेल तक जाने को तैयार थे. इतना ही नहीं, कांग्रेस में रहते हुए और श्रीमती इंदिरा गांधी की इच्छा के विपरीत एआईसीसी का चुनाव लड़ने का साहस भी उन्होंने ही दिखाया. वही यह कर भी सकते थे. ऑपरेशन ब्लूस्टार के समय उन्होंने पूरे देश की सोच से अलग जाकर इसका विरोध किया था, कई ने उनकी बड़ी आलोचना भी की थी. उन्हें बलिया का भिंडरावाले भी कहा गया. बाद में उनकी बात सच साबित हुई, इंदिरा गांधी को जान देकर इसकी कीमत चुकानी पड़ी.

धारा के खिलाफ बोलने की ताकत आज के नेताओं में नहीं दिखती है. सच बोलने की चंद्रशेखर जी की यही आदत उन्हें महात्मा गांधी और जयप्रकाश नारायण की कतार में खड़ा करती है. शिखर पर रह कर भी अपने मूल्यों से समझौता न करने वाले उनके जैसे लोग भारतीय राजनीति में कम ही हुए हैं.

चंद्रशेखर जी प्रधानमंत्री का पद भी ठुकराने की ताकत रखने वाले नेता थे. मुझे याद है कि जब वह प्रधानमंत्री थे और राजीव गांधी चंद्रशेखर जी से बात करना चाहते थे, चंद्रशेखर उनसे बात नहीं कर रहे थे. एक बार तो मैंने भी उनसे कहा कि आप उनसे बात क्यों नहीं कर लेते. उनका जवाब था कि चंद्रशेखर तो किसी से भी बात कर सकता है, लेकिन भारत का प्रधानमंत्री छद्म तरीके से और समझौते कर देश को चलाए, यह मुमकिन नहीं है. ऐसा साहस आज किसी नेता में नहीं दिखता.

साफ और स्पष्ट बोलने की जो आदत चंद्रशेखर जी में थी, उसका भी कोई जोड़ नहीं मिलता. चंद्रशेखर जी के बारे में माना जाता है कि वह पक्ष या विपक्ष में नहीं बल्कि निष्पक्ष थे. यही वजह है कि अपने दल के एकमात्र सांसद होने के बावजूद उनको सब बड़े ध्यान से सुनते थे. चंद्रशेखर जी के बारे में धारणा थी कि वह जो कुछ भी बोलेंगे, सही बोलेंगे. किसी राजनीतिक लाभ या हानि को ध्यान में रखकर नहीं बोलेंगे. उनके जाने से यह सबसे बड़ा शून्य पैदा हो गया है. आज की तारीख में देश में ऐसा राजनीतिक व्यक्तित्व नहीं बचा जिससे यह आशा की जा सके कि वह केवल सच कहेगा.

चंद्रशेखर जी के न रहने से देश की राजनीति में अविश्वास का संकट पैदा हो गया है. कोई ऐसा व्यक्तित्व नहीं दिखता, जो राजनीतिक हितों से ऊपर उठकर सोच सके. चंद्रशेखर जी का व्यक्तित्व ऐसा था कि जो उनके विरोधी थे, वह भी उनकी सलाह लेते थे. उनकी विरोधी पार्टियों के मंत्रियों को मैंने चंद्रशेखर जी के सामने अपना दुखड़ा सुनाते देखा है. जैन बंधुओं की डायरी का मसला, यानी हवाला कांड के समय, पक्ष हो या विपक्ष, सारे सांसद उनके पास ही अपना रोना रोते थे. चाहे वह माधव-राव सिंधिया हों या यशवंत सिंह. उनके न रहने से अब कोई ऐसा नहीं बचा, जिस पर राजनीतिक और सामाजिक जीवन में भरोसा किया जा सके. इस पूरे दौर में ऐसा कोई रहा ही नहीं, जिससे एक निष्पक्ष सलाह ली जा सके.

चंद्रशेखर जी की मुद्दों की समझ भी बेमिसाल थी. एक बार उन्होंने मुझसे कहा कि तुम लोग राजनीति के अपराधीकरण की समस्या पर बहुत जोर देते हो पर मुझे लगता है कि इससे बड़ी समस्या राजनीति के कॉरपोरेटाइजेशन की है. इससे मुकाबले की जरूरत है. आज उनकी बात बिलकुल सही लगती है. आज पूंजीवादी व्यापारिक घरानों से एक दो नहीं, कई सांसद भारत में हैं. करीबन 25 से अधिक सांसद इन्हीं बड़े पूंजीवादी घरानों के हैं, जो संसद में बैठे हैं. सरकार किसी की हो, राज इन्हीं का चल रहा है. यह देख कर मुझे चंद्रशेखर जी की बात याद आ जाती है. पहले संसद में गरीबी, पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की बातें होती थीं. फिर 90 के बाद राजनीति में एक बदलाव आया, बाज़ार हावी होता गया. आज सेंसेक्स, बाज़ार और फेरा जैसे मुद्दों पर बहस होती है. यह इसी कॉरपोरेटाइजेशन का नतीज़ा है.

चंद्रशेखर जी से व्यक्तिगत तौर पर कई सालों से मैं जुड़ा रहा. उनका और मेरा रिश्ता कुछ अलग ही तरह का था. व्यक्तिगत तौर पर तो हम दोनों बहुत नजदीक थे लेकिन कई ऐसे मुद्दे थे, जिन पर हम दोनों की सोच में बड़ा अंतर था. हम अधिकतर बातों पर एक दूसरे के विचारों के खिलाफ थे, लेकिन हम दोनों के अलावा शायद ही कोई तीसरा इन मतभेदों को देख पाया. चंद्रशेखर जी ने हमेशा मुझे अपना निकटतम समझा. हम दोनों की उम्र में काफी बड़ा अंतर था. वैसे तो वह मेरे पिता से भी दो साल बड़े थे. इसी वजह से हम दोनों बाप-बेटे की तरह ही थे, लेकिन साथ ही साथ दोस्त भी थे. कई बार हमारे बीच बड़े मतभेद भी होते रहे लेकिन मनभेद कभी नहीं हुआ. कई-कई दिनों तक मतभेद चलते लेकिन फिर एक दूसरे का मन दोनों को वापस साथ ले आता. उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि उनसे ज्यादा दिन रूठे नहीं रहा जा सकता था.

सचमुच, आज उनकी बड़ी याद आती है. वो कहते हैं न कि जब व्यक्ति रहता नहीं, तब उसकी प्रतिभा और उसके गुणों की अधिक याद आती है. मैं सचमुच खुद को उनके बिना बेहद अधूरा मानता हूं.

दिग्विजय सिंह

feedback.chauthiduniya@gmail.com

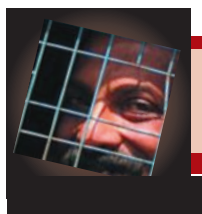

डा. बिनायक सेन क्या नक्सली हैं..

अगली 14 मई को डा. बिनायक सेन को रायपुर जेल में बतौर कैदी दो साल पूरे हो जाएंगे. इस मौके पर देश के तमाम हिस्सों में और विदेशों में भी उनकी रिहाई की मांग के लिए बड़े कार्यक्रम आयोजित किये जाने की तैयारियां जारी हैं. इसी कड़ी में गुजरे 16 मार्च से रायपुर जेल के बाहर हर सोमवार को गिरफ्तारी देने का कार्यक्रम शुरू हो चुका है. इसी दिन यानी 16 मार्च को कोलकाता और दिल्ली में भी उनकी रिहाई के लिए बड़ी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों और तबकों के लोग जुटे. 22 नोबल पुरस्कार विजेता एमनेस्टी इंटरनेशनल जैसी संस्था भी उनकी रिहाई चाहती है.

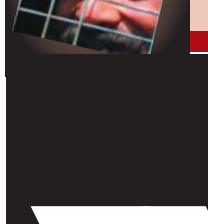

आदियोग

कौन हैं डॉ बिनायक सेन और क्या कसूर है उनका?

यह 1980 की बात है. दल्ली राजहरा में भिलाई इस्पात संयंत्र की मजदूर यूनियन की उपाध्यक्ष कुसुम बाई प्रसव काल में थीं. मामला दाइयों के बस के बाहर हो गया और संयंत्र के अस्पताल ने उन्हें भर्ती करने से इनकार कर दिया. इसलिए कि वे संयंत्र की नियमित मजदूर नहीं थीं. मजबूरी में उन्हें कोई 80 किलोमीटर दूर स्थित दूसरे अस्पताल ले जाया जाना था, लेकिन उससे पहले ही उनकी मौत हो गयी. इस घटना से गुस्साए आदिवासियों ने गांव-गांव उनकी शव यात्रा निकाली, ताकि बताया जा सके कि जिनके लिए वे अपना खून-पसीना एक करते हैं, उनके लिए मजदूरों की जिंदगी की कोई कीमत नहीं. इसके एक साल बाद खान मजदूरों की पहल पर शहीद अस्पताल की स्थापना हुई. शुरुआत क्लीनिक से हुई, जो डेढ़ दशक में 60 बिस्तरों का अस्पताल हो गया. डॉ बिनायक सेन इस बड़े काम के प्रणेता और नियामक रहे हैं.

ग्रामीण बच्चों के साथ डॉ विनायक सेन.

छत्तीसगढ़ के हर गांव में मितानिन दीदी हैं. मितानिन माने दोस्त. यह उन्हीं की मुस्तैदी का नतीजा है कि राज्य में शिशु मृत्यु दर में अभूतपूर्व कमी आई है. उन्होंने सुरक्षित प्रसव और टीकाकरण कराने का कार्यभार संभाला. प्रसव के दौरान और उसके बाद के अवैज्ञानिक तौर-तरीकों को बदलने की बड़ी भूमिका का निर्वाह किया. वे आंगनबाड़ी केंद्रों के कामकाज को दुरुस्त करने में भी जुटीं. मितानिन दीदी राज्य के हर गांव में जाना-पहचाना नाम है, जो सभी के सुख-दुख की साथी है और जिसके जिक्र के बगैर किसी भी गांव की तसवीर अधूरी है. डॉ बिनायक सेन इस प्रयोग के जनक हैं, जिसकी सफलता को राज्य सरकार ने स्वीकारा और 2000 में उसे राज्य स्तर पर सरकार और नागर समाज की साझेदारी के कार्यक्रम के तौर पर लागू भी किया.

छत्तीसगढ़ देश के बेहद गरीब पांच राज्यों में शामिल है. आदिवासी बहुल इस राज्य में खुद आदिवासी दूसरे दर्जे के नागरिकों की हैसियत में पहुंचा दिए गए हैं. सरकार और नक्सलियों के बीच हिंसक लुकाछिपी का खेल चालू है और दो पाटन के बीच आदिवासी हैं. जार्ज बुश की तर्ज पर मुख्यमंत्री का कहना है कि जो सलवा जुडूम के कैंप में नहीं, वे नक्सली या उनके हमदर्द हैं.

हालांकि सलवा जुडूम के कैंप किसी नरक से कम नहीं. कैंपों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं बस कहने भर को हैं. गंदगी का राज है और पीने के पानी का भारी अकाल है. इस कारण दस्त-उल्टी जैसी शिकायतें आम हैं. बंदूक की नोक पर सलवा जुडूम के कार्यकर्ता, जिन्हें एसपीओ (विशेष पुलिस अधिकारी) का दर्जा हासिल है, आदिवासियों को उनके गांव से हांक कर अपने कैंपों में ले आते हैं और उन्हें गुलामों की तरह रखते हैं. उनके नाम पर आनेवाली सरकारी सुविधाओं को लूटते हैं, बलात्कार करते हैं और नक्सलियों के नाम पर बेकसूरों की हत्याएं करते हैं. इस अन्याय में, जाहिर है कि पुलिस और अर्धसैनिक बल बराबर के हिस्सेदार हैं. जो कैंपों में नहीं हैं, वे कल्याणकारी योजनाओं से वंचित हैं और नक्सलियों के खिलाफ कार्रवाइयों के पहले शिकार हैं.

सबसे सुरक्षित काम है खामोश रहना. ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर. लेकिन डॉ बिनायक सेन चुप नहीं रह सके. रोगी की सेवा और इलाज की तरह उन्होंने सवाल उठाना और जवाब मांगना भी अपना धर्म समझा. मानवीयता और लोकतांत्रिकता की पैरोकारी की. सरकार-प्रशासन की नीयत और कार्रवाइयों को कटघरे में खड़ा किया. और जो गांधीजी के तीन बंदरों की मुद्रा में न बंध सके, वह शांति का दुश्मन है, कानून-व्यवस्था के लिए सबसे बड़ा खतरा है.

आरोप है कि डॉ बिनायक सेन नक्सलियों के पत्रवाहक की भूमिका में थे कि उन्होंने रायपुर जेल में बंद नक्सली नेता नारायण सान्याल का पत्र रायपुर के व्यवसायी और नक्सलियों के साथ रिश्ता रखने के आरोपी पीयूष गुहा तक पहुंचाया. जबकि वह जेल अधिकारियों की अनुमति से बीमार नक्सली नेता का इलाज कर रहे थे. उन पर राज्य के स्टेट पब्लिक सिक्योरिटी एक्ट के तहत मामला दर्ज किया है. इस काले कानून के तहत एक हजार से ज्यादा लोग विभिन्न जेलों में बंद हैं. मानवाधिकार कार्यकर्ता और डॉ बिनायक सेन की पत्नी प्रोफेसर एलिना सेन के मुताबिक इस कानून के तहत पहली गिरफ्तारी 12वीं दर्जे की छात्रा की हुई थी, इसीलिए कि उसके दोस्त का राजनैतिक विचार असुविधाजनक माना गया.

यह दुखद है कि हर स्तर पर डॉ बिनायक सेन की जमानत याचिका को खारिज कर दिया गया. सर्वोच्च न्यायालय ने भी बगैर कोई कारण बताए यही किया.

क्या संयोग है कि वह तारीख थी 10 दिसंबर 2007 – मानव अधिकार दिवस. गिरफ्तारी से पहले उन्हें भगोड़ा तक बताया गया, जबकि वह कोलकाता में थे और बीमार थे. लेकिन इस तोहमत से बचने के लिए वह बीमारी में ही रायपुर पहुंचे और जैसा कि तय था, तुरंत हिरासत में ले लिए गए. हत्या, बलात्कार, आगजनी, दंगा, अपहरण, तस्करी और माफियागिरी जैसे जघन्य अपराधों के पराक्रमी जमानत पर फौरन रिहा हो जाते हैं, और अक्सर चुनावी दंगल में उतर कर माननीय भी हो जाते हैं. और यह विडंबना है कि डॉ बिनायक सेन की रिहाई के लिए बाकायदा अभियान छेड़ने की जरूरत पड़ती है. 22 नोबल पुरस्कार विजेताओं तक को सामने आना पड़ता है. पूरी दुनिया में हमारी भद पिट रही है. तनिक सोचिए डॉ रमन सिंह जी, डॉ मनमोहन सिंह जी. सविनय निवेदन है कि फिर से विचार कीजिए मी लॉर्ड.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

उड़ीसा के जन संघर्ष, उनके सबक और चुनौतियां

वर्ष 1969 में पूरे उड़ीसा राज्य में आम हड़ताल करके एक और स्टील प्लांट लगाने की सरकार से मांग की गई थी. आज उड़ीसा में देशी-विदेशी कंपनियों द्वारा प्रस्तावित कारखानों, माइनिंग का व्यापक पैमाने पर विरोध किया जा रहा है. 40 साल पहले जब एक और स्टील प्लांट की मांग की जा रही थी, तब लोगों को यह लग रहा था कि इससे रोज़गार के अवसर मिलेंगे, प्लांट में हज़ारों लोगों को काम सीधे तौर पर मिलेगा, शिक्षा-स्वास्थ्य की सुविधाओं का प्रसार होगा और श्रमिकों के कल्याण हेतु तमाम कदम उठाए जाएंगे, लेकिन आज उन्हें लग रहा है कि उन्हें उजाड़ दिया जाएगा, जो कुछ है भी, वह भी छिन जाएगा. पहाड़, वन, ज़मीन, पानी, घर-आवास, गांव-बस्ती उनसे छिन जाएगी. उन्हें अपना पूरा जीवन अंधकारमय दिख रहा है. वे विरोध करने को तथा लड़ते हुए मर जाने को तत्पर हैं.

एक दौर था, जब सामंत-राजा-रजवाड़े औद्योगीकरण का विरोध कर रहे थे, इससे उन्हें अपने वर्चस्व के कमज़ोर होने का भय सता रहा था. आज़ादी से पूर्व ओरिएंट पेपर मिल के सिंगा में लगाने की इजाज़त कालाहांडी के राजा ने नहीं दी थी. यह मिल संबलपुर में लगाई गई क्योंकि यह अंग्रेजों द्वारा शासित था. इसी प्रकार मयूरभंज के राजा की अनुमति न मिलने पर टाटा कंपनी बारीपदा के बजाय टाटा नगर में लगाई गई.

आज स्थितियां उलट गई हैं. आम जनता कंपनियों का विरोध कर रही है और पुराने राजा-रजवाड़े कंपनियों का स्वागत कर रहे हैं. इस बदलाव को सहजता से समझा जा सकता है. उदारीकरण-निजीकरण की वैश्विक प्रक्रिया के सक्रिय सहभागी बनने के बाद आज हमारी सरकार अपने ही नागरिकों के हित के खिलाफ बेशर्मी के साथ खड़ी है. उसकी कल्याणकारी भूमिका बदलकर वैश्विक पूंजी की निर्लज्ज चाकरी हो गयी है. विकास के तथाकथित मॉडल को आम लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों से समझने की प्रक्रिया शुरू कर दी है. उसी का परिणाम है कि आज उड़ीसा में सबसे ज़्यादा दलित-वंचित समाज नेहरू के आधुनिक मंदिरों के नवीनतम चेहरों की आज की असलियत तथा इसमें बैठे महाप्रभुओं की मंशा समझते हुए कंपनियों/माइनिंग को नकार रहे हैं.

विकास एवं विनाश की उलझन में फंसे इस समाज को दिशा देने के लिए समाचार पत्र, बुद्धिजीवी, राजनीतिक दल तथा स्वयंसेवी संगठन, पर्यावरणविद तथा दाता संस्थाएं हरकत में हैं. वहीं दूसरी ओर आशा की किरण के रूप में कुछ ऐसी ताकतें और लोग भी हैं, जो पूंजी केंद्रित-माल मुनाफा केंद्रित विकास की प्रक्रियाओं को चुनौती दे रहे हैं और भुक्तभोगी समाज को सर्वभोगियों के खिलाफ लामबंद करते हुए सहभोगियों के भितरघात से भी अवगत करा रहे हैं.

यह जटिल स्थिति आज उड़ीसा में चल रहे जनसंघर्षों के लिए एक गंभीर चुनौती है. जब सरकार आंदोलनों के प्रति निर्मम हो, कंपनियां अपनी अपनी गुंडावाहिनी बना चुकी हों, न्यायालय माइनिंग के पक्ष में निर्देश दे रहे हों, कंपनियां अपनी-अपनी स्वयंसेवी संस्थाएं, ट्रस्ट, फाउंडेशन बना कर लोगों को प्रलोभन दे रही हों, गुमराह कर रही हों, समाचार पत्र जनता के हितों के साथ न हों, तो ऐसे हालात में जनसंघर्षों को और सचेत, मुस्तैद तथा एकजुट रहना होगा. इस तरह के प्रयास किए जा रहे हैं, मगर बहुत नियोजित एवं ढंग से नहीं हो पा रहे हैं.

मुख्य राजनीतिक दल, दाता संस्थाएं, स्वयं सेवी संगठन अपने प्रचार अभियानों, कार्यशालाओं, सम्मेलनों, बयानों, साक्षात्कारों आदि के जरिए प्रभावित एवं आंदोलनकारी जनों को या तो मध्यम मार्ग की ओर ले जाने को तत्पर हैं (जो बेहतर मुआवजे, क्षेत्र के विकास तथा पर्यावरण कानूनों के सख्ती से लागू करने और बेहतर पुनर्वास की तरफ पहल करने को प्रेरित करते हैं) या प्रभावित होने वाले लोगों को उनकी गरीबी, पिछड़ेपन, मलेरिया, मच्छर, भुखमरी, अशिक्षा, सूखा, महामारी की याद दिलाकर शहर की चकाचौंध की बात करके उन्हें अपना गांव, घर, बस्ती छोड़ देने को सहमत करते दिखते हैं. साथ ही यह कह कर कि कंपनी तो लगेगी ही, माइनिंग तो होगी ही – लोगों के अंदर निराशा पैदा करके उनके संघर्ष करने के तेवर को धूमिल करते हैं. उनका यह मनोवैज्ञानिक प्रचार अभियान, लालच देने के कारनामे तथा आमजनों की चेतना को कुंद करने की साजिश उड़ीसा के जन संघर्षों के लिए एक गंभीर चुनौती है.

समाचार पत्रों की स्थिति यह है कि भुवनेश्वर के एक स्थानीय समाचार पत्र धारित्री एवं देश के प्रमुख अखबार द हिंदू के अलावा सभी समाचार पत्र कंपनियो के साथ हैं. अभी पोस्को कंपनी ने कोरिया के सिओल शहर में प्रेस वार्ता आयोजित की और भुवनेश्वर के तमाम पत्रकारों को हवाई जहाज़ से सिओल ले जाया गया. उड़ीसा के एक प्रमुख समाचार पत्र 'समाज' के कार्यालय में पोस्को के अधिकारी संपर्क बढ़ाने के लिए जा चुके हैं.

वास्तव में मुख्यधारा की पूंजीवादी-साम्राज्यवाद परस्त मीडिया सामाजिक सरोकारों को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लक्ष्य के साथ व्यक्तिवाद और उपभोक्तावाद के अंधाधुंध प्रचार में बड़ी मुस्तैदी, प्रतिबद्धता, कर्तव्यनिष्ठा, कौशल तथा परिश्रम के साथ लगा हुआ है. यह अपने प्रिंट-इलेक्ट्रानिक रूपों के द्वारा जन सामान्य के सौंदर्यबोध, संघर्ष चेतना तथा यथार्थबोध को कुंद करने में सोल्लास निमग्न है. उसके द्वारा उदारीकरण, भूमंडलीकरण, निजीकरण तथा बाजारीकरण के पक्ष में आम सहमति बनाने और जनमत निर्माण करने की कोशिश निरंतर जारी है. आमजनों, हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों के दुख-दर्द, पीड़ा और असंतोष के लिए वहां कोई जगह नहीं है. अपवाद स्वरूप कुछ छोटे-छोटे स्थानीय अखबार, पत्रिकाएं ही हैं, जो जन सरोकार के प्रति समर्पित हैं.

ऐसा लगता है कि राष्ट्र राज्य आज निजीकृत हो गया है और अपने ही नागरिकों के हितों के खिलाफ आचरण करते हुए उसकी सरकार जन संघर्षों के विरोध में सभी तरह के दमन के हथकंडों का इस्तेमाल तो कर ही रही है, अपने ही कानूनों तथा संवैधानिक प्रतिबद्धताओं का कत्ल कर रही है. इतना ही नहीं संघर्षरत गांवों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली, बिजली आपूर्ति को भी लगभग बन्द कर दिया गया है. इन गांवों पर सामूहिक आर्थिक दंड की योजना पर भी सरकार विचार कर रही है. स्कूलों को मनचाहे ढंग से पुलिस छावनी में बदल दिया जाता है तथा महीनों स्कूल बंद रखे जाते हैं. सरकार की सारी कल्याणकारी योजनाएं इन विद्रोही गांवों में बंद कर दी गई हैं. ऐसा लगता है कि विरोध-प्रतिरोध के संवैधानिक लोकतांत्रिक अधिकारों का इस्तेमाल करने वालों को नागरिकता के मौलिक अधिकारों से भी वंचित करने की सरकारी पहल अपनी बुलंदियों पर है.

उड़ीसा में चल रहे जन संघर्षों के संदर्भ में कांग्रेस, भाजपा एवं बीजेडी की भूमिका एक जैसी है. देश की आर्थिक नीति, औद्योगिक नीति, कृषि नीति एवं बाज़ारीकरण के संदर्भ में इनकी मतैक्यता उड़ीसा में भी साफतौर पर दिखाई देती है. ये दल तथा इनके नेता कंपनियों तथा माइनिंग के समर्थक हैं. इन्होंने कई बार सभाएं करके विकास के वास्ते कंपनियों तथा इनके कारोबार का समर्थन करने का अनुरोध आम लोगों से किया है तथा इन योजनाओं का विरोध करने वालों को विकास विरोधी बताया है. इनका यह भी तर्क है कि जो लोग आदिवासियों को अपना गांव-घर-जंगल-ज़मीन न छोड़ने के लिए उकसा रहे हैं, वे वास्तव में आदिवासियों को उसी हालत में बनाए रखना चाहते हैं जिन हालात में वे शताब्दियों से हैं. ये दल तथा इनकी अगुआई में चल रही सरकारें जल्दी से जल्दी ज़्यादा से ज़्यादा मेमोरंडम आफ अंडरस्टैंडिंग देशी विदेशी कंपनियों के साथ करके उसे अविलंब लागू कराने को आतुर हैं. इसके लिए वे आंदोलनकारियों के साथ किसी भी स्तर पर बल प्रयोग करके निपटने के किसी भी तरीके के हामी हैं. इनके नेतृत्व में चलने वाली सरकारों ने विकास विरोधियों को सबक सिखाने के लिए न केवल पुलिस एवं अन्य सशस्त्र बलों का इस्तेमाल किया हैं, काले कानूनों एवं फर्जी मुकदमों का सहारा लिया है बल्कि कंपनियों को अपनी गुण्डावाहिनी बनाने की छूट दे रखी है. केंद्र और राज्य सरकार को किसी भी प्रकार का विरोध प्रतिरोध स्वीकार्य नहीं है.

इन दलों के राष्ट्रीय तथा प्रांतीय नेता पुलिस फायरिंग की घटनाओं के बाद जनता के सामने घड़ियाली आंसू बहाने भी पहुंचते रहते हैं परंतु उड़ीसा विधानसभा में इन हालात पर कभी चर्चा तक नहीं होती.

केंद्र में सत्तासीन यूपीए के सहयोगी वामपंथी मोर्चे ने भी इन मसलों को कभी एजेंडे में शामिल नहीं कराया और न ही संसद में ज़ोरदार ढंग से इन मसलों को उठाया.

पुलिस, सत्ताधारी दल तथा मीडिया का एक बड़ा हिस्सा जारी आंदोलनों को दबाने के लिए इन संघर्षों में माओवादियों के संलिप्त होने का प्रचार करता रहता है. अभी तक उड़ीसा में जारी जनसंघर्ष लोकतांत्रिक तथा अहिंसक ही है जबकि पुलिस ने काशीपुर में 3, रायगढ़ में 5 तथा कलिंगनगर में 14 आंदोलनरत जनों को अपनी गोली का शिकार बनाया है, कंपनियों के भाड़े के टट्टुओं-गुंडों ने काशीपुर में एक तथा पोस्को विरोधी आंदोलन के एक साथी की हत्या की. उड़ीसा के जनसंघर्षों पर जारी कातिलाना हमलों के बाद भी लोग अहिंसा के ही रास्ते पर कायम हैं. अभी तक केवल एक पुलिसवाले की मौत कलिंगनगर में भीड़ के आक्रमण से हुई है. वह भी तब, जब 12 आंदोलनकारियों को पुलिस ने मौत के घाट उतार दिया.

उड़ीसा के जनसंघर्षों के अगुआकार सामान्य तौर पर औद्योगीकरण के विरोधी नहीं हैं. उनकी समझदारी है कि औद्योगिक उत्पादन देश की व्यापक आबादी की ज़रूरत के हिसाब से हो. किसी देशी-विदेशी कंपनी के साम्राज्य-मुनाफे के संवर्द्धन के लिए न हो. वे सवाल करते हैं कि एक अरब की आबादी के लिए कितने स्टील की ज़रूरत है. दूसरा उनका मानना है कि कृषि योग्य भूमि पर उद्योगों की स्थापना उचित नहीं है. तीसरा आंदोलनकारियों का यह भी कहना है कि प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन बरकरार रखकर ही प्राकृतिक संपदा का उपयोग किया जाये. प्राकृतिक संपदा का उपयोग ज़रूरत के हिसाब से किया जाये – मुनाफे या व्यापार के लिए नहीं. सबसे बड़ी बात यह है कि विकास का चरित्र समग्रता वाला है या कुछ मुट्ठीभर लोगों के लिए. क्या उसे विकास कहा जा सकता है, जो कुछ लोगों को मालामाल करे और व्यापक आबादी को तबाह कर दे, उजाड़ दे, विस्थापित कर दे.

यह जानना-समझना भी दिलचस्प होगा कि समाज परिवर्तन में एक उत्प्रेरक की भूमिका निभाने की मंशा लेकर कार्य शुरू करने वाले 'स्वैच्छिक संगठन' किस प्रकार 'गैरसरकारी संगठन' बन गए और आगे चलकर 'प्रो-गवर्नमेंट ऑर्गनाइजेशन' तथा 'डेवलपमेंट ऑर्गनाइजेशन' के रूप में रूपांतरित हो गए. समाज परिवर्तन के प्रति प्रतिबद्धता से अपनी यात्रा शुरू करके व्यवस्था के प्रबंध तंत्र के हिस्से कैसे बन गए, उत्प्रेरक के बजाय परियोजनाओं को लागू कराने के विशेषज्ञ कैसे बन गये?

वे संस्थाएं, जो व्यवस्था परिवर्तन के नज़रिये से अस्तित्व में आईं, संघर्ष किए, यातनाएं सहीं तथा सरकार के द्वारा उत्पीड़न का शिकार भी बनीं, आज अपने कारनामों, कार्यक्रमों-गतिविधियों से व्यवस्था पोषक के रूप में आंदोलनकारी संगठनों द्वारा चिन्हित की जा रही हैं. इसके कारणों को समझे बगैर इनका सही मूल्यांकन अधूरा होगा यह एक अलग अध्ययन का विषय है कि दाता संस्थाओं की शर्तों – एजेण्डों, सरकारी निर्देशों के अनुपालन तथा अफसरों-नेताओं-मंत्रियों- मुख्यमंत्रियों-गर्वनर की चाकरी का रास्ता इन्होंने क्यों चुना या इस रास्ते पर जाने को क्यों बाध्य हुए?

महिला संगठनों-आंदोलनों के संदर्भ में यदि देखें, तो साफ दिखता है कि महिला आंदोलनकारियों को स्वंय-सहायता समूहों से जोड़कर संस्थाओं ने महिला पहल को कमज़ोर किया है.

सफल जन संघर्षों में महिलाओं की प्रमुख भूमिका रही है. सुमनी झोरिया, मुक्ता झोरिया अनपढ़ थीं परंतु राज्य योजना आयोग की सदस्य बनीं. एक कंपनी द्वारा प्रायोजित होने के नाते इन्होंने पुरस्कार लेने से इनकार कर दिया. ये महिलाएं बीजू पटनायक के कार्यकाल में आदिवासी विकास परिषद (उड़ीसा सरकार) की सलाहकार भी थीं. शराबबंदी के खिलाफ पहल की जिम्मेदारी सरकार ने महिला संगठन अमगा को दी थी. महिलाओं-आदिवासियों को आगे लाने में जिन लोगों ने प्रमुख भूमिका निभाई थी, उन्हीं लोगों ने अपनी संस्थाएं पंजीकृत करा लीं, संस्था प्रमुख बन गए, फंडिंग में लग गए. समझौतापरस्त परियोजनाओं के काम में लग गए. छोटे-छोटे मुद्दे लेकर प्रोजेक्ट शुरू हो गए तथा आंदोलनों की तरफ पीठ कर ली गई. महिला कार्यकर्ताओं को कोई प्लेटफार्म नहीं उपलब्ध कराया गया, फलत: कुछ को प्रोजेक्ट में घसीट लिया गया, बाकी को उनके हाल पर छोड़ दिया गया. संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उड़ीसा में स्थापित संस्थाओं का एजेंडा पीपुल्स एजेंडा से इस्टेब्लिशमेंट एजेंडा की तरफ मुड़ गया है. अधिकांश संस्थाओं ने सेवाभाव तथा प्रोजेक्टवाद को स्वीकार कर लिया है, जिन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया है, वे अंकुरन तथा अग्रगामी की तरह संकटों से घिरे हुए हैं. एकता परिषद जैसे संगठन सत्ताधारी दल के नेताओं मुख्यमंत्रियों की प्रशंसा में कसीदे कसने लगे हैं, चाहे वे फासीवादी सांप्रदायिक दल के ही क्यों न हो? गोया कि सांप्रदायिक फासीवाद गरीबों के लिए कोई खतरा नहीं है.

उड़ीसा के जनसंघर्षों में यह देखने में आता है कि यह संघर्ष उन्हीं लोगों को अपने साथ जोड़ पाये हैं जो लोग सीधे तौर पर प्रभावित होने जा रहे है. जिन योजनाओं के खिलाफ जनसंघर्ष किया जा रहा है तथा जो मुद्दे उठाए जा रहे हैं उनके व्यापक प्रभाव के बारे में अवगत कराते हुए वृहत स्तर पर लोगों को जोड़ने में जन संघर्ष असफल रहे हैं. ये मुद्दा आधारित, स्थानीय हैं और कभी-कभी लगता है कि कुछ मामलों में यह व्यक्तिवादी रूझान होने के नाते निजीकृत न हो जाएं. अभियानों में आए कई ऐसे प्रभावशाली लोग हैं जिन्होंने आंदोलनकारी बने रहने के बजाय सेवा प्रदाता की भूमिका को ज़्यादा पसंद किया है. उड़ीसा के जन संघर्षों का कोई प्रांतीय स्तर का सक्रिय व सशक्त साझा मंच न होने का परिणाम यह हैं कि राज्य के दमन और कॉरपोरेट हिंसा का प्रभावकारी प्रतिरोध नहीं हो पाता है और एक-एक करके सभी जन संघर्षों के ऊपर दमन जारी है.

धीरेंद्र सिंह

feedback.chauthiduniya@gmail.com

भारतीय मतदाताओं की खामोशी को हल्के में न लें

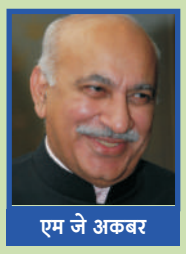

एम जे अकबर

परिपक्व राजनेता दावों और चतुराई की राजनीति करते हैं. यह किसी भी लोकशाही की सबसे अहम ज़रूरत है. वह अपना सही गणित मौन में ही लगाते हैं. अगर आप सचमुच जानना चाहते हैं कि लालू यादव कांग्रेस के बारे में क्या सोचते हैं, तो डॉ. मनमोहन सिंह और सोनिया गांधी पर बरसाए गए उनके प्रशंसा के फूलों को नज़रअंदाज़ कर दीजिए. इसकी जांच कीजिए कि वह मौन में क्या करते हैं.

हम अक्सर चुनाव का मतलब हल्ला-गुल्ला से लगा लेते हैं. सच पूछिए तो भारत में उसी पल खामोशी छा जाती है, जब चुनाव आयोग शुरुआती घंटी बजाता है. मीडिया किसी उम्मीदवार के शोर-शराबे को तो खूब महत्व देता है, लेकिन आप मतदाता की चुप्पी को कैसे आंकेंगे.

जनमत सर्वेक्षण एक रास्ता हो सकता है. हालांकि भारतीय मतदाता अब दुनिया में सबसे अधिक चुप्पी साधनेवाला हो गया है. अगर वह अपना दिमाग नहीं खोले, तो सर्वेक्षणों से निकलनेवाले नतीजे केवल अनुमान हो सकते हैं, और कुछ नहीं. ज्यादा से ज्यादा यह एक दिशा-निर्धारक हो सकता है. एक बार जॉन केनेथ गैलब्रैथ ने सुझाव दिया था कि आर्थिक भविष्यवाणी करने का सबसे बड़ा उद्देश्य ज्योतिष-शास्त्र की प्रतिष्ठा करवाना है. कुछ जनमत सर्वेक्षण सितारों की गणना करनेवालों को ही पैगंबर का दर्जा दे डालता है. शायद जयललिता जानती हैं कि वह क्या कर रही हैं, जब वह अपनी पार्टी का टिकट चाहनेवालों को अपनी कुंडली के साथ बुलाती हैं. कुंडलियां शायद जनमत सर्वेक्षण से बेहतर नतीजे दे सकती हैं.

भारतीय मतदाताओं का स्फिंक्स की तरह से उठ खड़ा होना खास तौर से उस उम्मीदवार को विचलित कर सकता है, जो मुख्य तौर पर किसी शहरी ड्राइंग रूम में ही रचा-बसा हो. जो परिपक्व नहीं है, वह आसानी से हिस्टीरिया का शिकार हो सकता है. वरुण गांधी की तरह के लोग पिछले दशक के एक महत्वपूर्ण विकास से परिचित नहीं हो सकते, जब वह मुसलमानों को शैतान बताकर समर्थन पाना चाहते हैं. हिंदू मतदाता अब परिपक्व हो चुका है. वह अब एक बेहतर ज़िंदगी, ऊंची आमदनी और शांति की तमन्ना रखता है. वह उन राजनेताओं को गाली देता है, जो उसकी समझ में आनेवाली बातों को नहीं समझता. वह बात यह है कि आप या तो सांप्रदायिक हिंसा की आग भड़का सकते हैं या फिर एक बढ़ती अर्थव्यवस्था का लाभ उठा सकते हैं. आप दोनों के साथ नहीं रह सकते.

कहने का मतलब यह नहीं कि हमने अपनी चेतना या बातचीत से आक्रामकता को हटा दिया है. वह तो खुद को भ्रम में डालने वाली बात हो जाएगी. आक्रामकता आसानी से भारतीय संभ्रांत वर्ग के पास आ सकती है, पर इसके पलटवार के भी खतरे हैं. इसके बावजूद आक्रामकता, सांप्रदायिकता और जातीय पूर्वाग्रह इनके हथियार हैं. हालांकि ऐसे लोग इस बात की पूरी सावधानी रखते हैं कि आक्रमण का निशाना बननेवाला समुदाय सुनने के दायरे में नहीं हो. मायावती के ख़िलाफ संभ्रांत लोगों के गुस्से का तथाकथित भ्रष्टाचार से कोई लेना-देना नहीं है. अगर भ्रष्टाचार एक सामाजिक पाप होता तो दिल्ली में बहुत कम मंत्रियों को ही डिनर के लिए आमंत्रित किया जाता. मायावती की समस्या यह है कि वह हममें से एक नहीं हैं.

दस हज़ार सालों के पूर्वाग्रह का अंत केवल 60 वर्षों की समतावादी राजनीति से नहीं हो सकता है. परिपक्व राजनेता दावों और चतुराई की राजनीति करते हैं. यह किसी भी लोकशाही की सबसे अहम ज़रूरत है. वह अपना सही गणित मौन में ही लगाते हैं. अगर आप सचमुच जानना चाहते हैं कि लालू यादव कांग्रेस के बारे में क्या सोचते हैं, तो डॉ. मनमोहन सिंह और सोनिया गांधी पर बरसाए गए उनके प्रशंसा के फूलों को नज़रअंदाज़ कर दीजिए. इसकी जांच कीजिए कि वह मौन में क्या करते हैं. उन्होंने और रामविलास पासवान ने बिहार की 40 सीटों में से कांग्रेस को केवल तीन सीटें दीं. यह आकलन दुश्मनों का नहीं, दोस्तों का है. मुलायम सिंह यादव के मुताबिक भी कांग्रेस उत्तर प्रदेश की 80 सीटों में छह से अधिक की हक़दार नहीं है. पिछली लोकसभा में पश्चिम बंगाल की 42 सीटों में ममता बनर्जी के पास एक सीट थी और कांग्रेस के पास पांच. ममता बनर्जी ने नए गठबंधन में दबाव डालकर अपनी बात मनवा ली और कांग्रेस भी झुक गई. देवगौड़ा ने तो कर्नाटक में समझौते की ज़मीन ही नहीं तैयार होने दी.

इस तरह का एकतरफा व्यवहार केवल कांग्रेस के साथ ही नहीं होता. नवीन पटनायक ने उड़ीसा में भाजपा को गठबंधन के लायक नहीं समझा. जहां क्षेत्रीय दलों को महत्व दिखता है, वहां वह अपना व्यवहार बदल लेते हैं. भाजपा के लिए असम, बिहार, हरियाणा और पंजाब में यह बात लागू होती है, तो तमिलनाडु और झारखंड में कांग्रेस के साथ यही हुआ.

भारतीय मतदाताओं के तात्कालिक मौनव्रत की साइलेंस ऑफ द लैंब के साथ तुलना करने की भूल न करें. यह तो बाघों का मौन है, जो दबे पांव अपने शिकार की तरफ बढ़ते हैं, जिनकी दहाड़ केवल एक बार ही सुनाई देती है. वह गर्जना शिकार को दबोचने की होती है. जब बाघों को पांच वर्षों में केवल एक बार शिकार का मौका मिले, तो बिना किसी संदेह के शिकार बहुत अधिक होंगे.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

प्रधानमंत्री की कुर्सी का झगड़ा नहीं

मेरे ख्याल से स्वतंत्र भारत के इतिहास में यह बहुत अहम चुनाव होगा. संभव है कि इस चुनाव से भारत की दिशा में एक सकारात्मक परिवर्तन आए. लोग छह वर्ष भाजपा के नेतृत्व में एनडीए को देख चुके हैं और कांग्रेस का राज तो काफी दिन देखा है. पांच वर्ष तक कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए का शासन भी देखा है और जो अनुभव हुआ है, उस आधार पर लोग बदलाव चाहते हैं. जो हालात हैं, उसमें मैं समझता हूं कि बदलाव आएगा.

अभी देश के जो राजनीतिक हालात हैं, उससे मैं न सिर्फ मानसिक बल्कि नैतिक तौर पर भी बेहद दुखी हूं. संसदीय कामकाज और लोकतांत्रिक संस्थाओं की हालत देख कर मन में कोफ्त होती है. चिंता होती है कि आखिर भारत का भविष्य क्या है. इसलिए अब वक्त आ गया है कि हम एक नये रास्ते की तलाश करें. साठ सालों तक इनके हाथों में हमने शासन की बागडोर देकर देख लिया. सिवाय पतन के कुछ हासिल नहीं हुआ. इसलिए इस बार इन्हें सत्ता से बेदखल कर देने की जरूरत है और मुझे इस बार बदलाव के भरपूर संकेत दिख रहे हैं. पंद्रहवीं लोकसभा के लिए हमारे देश में जो आम चुनाव होने जा रहा है, वह मेरे ख्याल से स्वतंत्र भारत के इतिहास में बहुत अहम चुनाव होगा. संभव है कि इस चुनाव से भारत की दिशा में एक सकारात्मक परिवर्तन आए. लोग छह वर्ष भाजपा के नेतृत्व में एनडीए को देख चुके हैं और कांग्रेस का राज तो काफी दिन देखा है. पांच वर्ष कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए का शासन भी देखा है और जो अनुभव हुआ है, उस आधार पर लोग बदलाव चाहते हैं. जो हालात हैं, उसमें मैं समझता हूं कि बदलाव आएगा.

मुझे लगता है कि जितनी भी समस्याएं कांग्रेस और भाजपा के राज में पैदा हुई, उससे अनेक सवाल खड़े हो गये हैं. उनका वर्गचरित्र उनकी ढुलमुल नीतियां सभी सवालों के घेरे में है. यही वजह है कि वामदल गैर भाजपा और गैर कांग्रेस सरकार बनाने की कोशिश में है. ताकि जो समस्याएं हैं, वह सुलझाई जा सकें. यह युग मिली-जुली सरकारों का युग है. कई पार्टियां हमारे पास आ चुकी हैं और कई पार्टियां आएंगी. और हम सभी मिलजुल कर एक वैकल्पिक सरकार बनाएंगे. जनता को एक विकल्प देंगे हम कि वह कांग्रेस और भाजपा से अलग भी सरकार चुन सकें. वामदलों के इस मोर्चे को मीडिया ने तीसरा मोर्चा का नाम दिया है. हालांकि ऐसा नहीं है. हम कांग्रेस और भाजपा के विकल्प के तौर पर खड़े होने की कोशिश में हैं. इन दोनों ही पार्टियों की यही कोशिश रही है कि देश की राजनीति का ध्रुवीकरण कर दिया जाए. बिल्कुल अमेरिका की डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन पार्टी की तरह कि अगर आप एक पार्टी से नाराज़ हैं, तो दूसरी तरफ चले जाएं. दूसरी से नाराज हैं, तो पहली तरफ आ जाएं. तीसरा कोई उपाय नहीं. हालांकि फर्क दोनों पार्टियों के बीच भी उन्हीं का अनुसरण करने की कोशिश करती है. भूल जाती है कि भारत अमेरिका नहीं है. भारत विविधताओं से भरा है, बावजूद इसमें एकता है. यहां के राज्यों की अलग-अलग विशेषताओं को भूला नहीं जा सकता. लिहाजा वहां की जो पार्टियां है, प्रादेशिक दल हैं, वो भी इस देश की राजनीति में मज़बूत भूमिका निभाते हैं. सिर्फ दो पार्टियों के बीच में इतना विशाल भारत कहां समाने वाला है? उसे तो तीसरी पार्टी भी चाहिए. इसी पर आम राय बनाने का काम चल रहा है. वैसी सभी पार्टियां हमारे साथ हैं, जो कांग्रेस और भाजपा की नीतियों को पसंद नहीं करतीं. हां इस बात को लेकर ज़रूर चर्चा चलती है कि जब ढेर सारी पार्टियां एक साथ हों, तो प्रधानमंत्री पद की दावेदारी किसकी होगी. प्रधानमंत्री कौन बनेगा. हरेक पार्टी का कार्यकर्ता चाहता है कि उसके दल का नेता प्रधानमंत्री बने, तो इसमें गलत भी क्या है. लेकिन इस मसले पर फिलहाल कोई अनबन नहीं है. यह अभी चर्चा का विषय नहीं है. चुनाव सामने है. ध्यान उस पर देने की जरूरत है. चुनाव के बाद जिस पार्टी के प्रत्याशी ज्यादा जीत कर आएंगे, उस पार्टी का नेता प्रधानमंत्री बनेगा. फिलहाल इस पर सिरफुटव्वल करने की कोई जरूरत नहीं है. यह तो आम सहमति की बात है. यह सारी चर्चाएं मीडिया की है - जहां सूत न कपास, जुलाहों में लट्ठमलट्ठा है. हालांकि प्रधानमंत्री कौन बने, इस प्रश्न का हल ढूंढते समय दल में शामिल नेताओं के दर्जे का ख्याल जरूर रखा जाएगा. जब यूपीए सत्ता में आयी और हमने बाहर से समर्थन दिया, उस समय भी यह कहां तय था कि प्रधानमंत्री कौन बनेगा. वह भी मिली-जुली सरकार थी. पर प्रधानमंत्री आम सहमति के आधार पर ही बना. इसलिए संभावना किसी की भी हो सकती है. मीडिया में इस बात को लेकर हमेशा बहस चलती है कि हम जो तीसरा विकल्प तैयार कर रहे हैं, उसमें मायावती की दावेदारी प्रधानमंत्री पद के लिए सबसे ज्यादा है. यह भी कहा जाता है कि मायावती इस मुद्दे पर अड़ी हुई है. पर ऐसा कुछ भी नहीं है. हमारे साथ जो भी नेता जुड़ रहे हैं, उनमें पूरी तरह आपसी सामंजस्य है और मायावती पूरा सहयोग दे रही है.

हम यूपीए सरकार की कोऑर्डिनेशन कमेटी में थे. हमने सरकार को बैंकों, इंश्योरेंस सेक्टर का निजीकरण करने से रोका.

देश की समस्याओं को लेकर हम सभी पार्टियों की एक राय है. हम एकजुट हैं. इसलिए मतभेद का कोई सवाल ही नहीं है. कांग्रेस से हमारे अलग होने की वजह नीतियों पर गहरा मतभेद था. न सिर्फ परमाणु करार बल्कि कई और मुद्दे भी थे, जिन पर हम एक राय नहीं थे आर्थिक नीति भी उनमें से एक है. कांग्रेस की सरकार ऐसी आर्थिक नीति का अनुसरण कर रही थी, जो बाज़ार पर पूरी तरह निर्भर थी. किसी तरह का उस पर कोई नियंत्रण नहीं, कोई रेग्यूलेशन नहीं - जिसको न्यू लिबरेशन ऑफ कैपिटलिज़्म कहा जाता है. अमेरिका में भी यही नीतियां थीं. उसका नतीजा आप देख रहे हैं. देश की आर्थिक व्यवस्था धराशायी हो गयी. अकूत धन बर्बाद हो गया. अब सरकार को ही उल्टा पैसा देकर वहां के बैंक और संस्थानों को बचाना पड़ रहा है. सिर्फ अमरीका ही नहीं, इंग्लैंड भी जर्मनी भी. भारत ने भी यही रास्ता अपनाया और इस हालत में पहुंच गया. अगर देश बर्बाद नहीं हुआ तो सिर्फ इस वजह से क्योंकि हम वामपंथियों ने हालात को संभाला. हम यूपीए सरकार की कोऑर्डिनेशन कमेटी में थे. हमने सरकार को बैंकों का निजीकरण करने से रोका. इंश्योरेंस सेक्टर का निजीकरण करने से रोका. कई हमारे जो बड़े-बड़े पब्लिक सेक्टर हैं - भेल वगैरह... उसका भी निजीकरण हमने नहीं होने दिया. पेंशन फंड, प्रोविडेंट फंड दिया, जो बहुत बड़ी तादाद में इकट्ठी है - उसको भी निजी हाथों में हमने नहीं जाने दिया. अगर वामदलों ने सरकार पर लगाम नहीं लगायी होती तो यह संकट बहुत भयावह हुआ रहता. इसके साथ ही विदेश नीति का भी प्रश्न था. जवाहर लाल नेहरू और इंदिरा गांधी के ज़माने से हम स्वतंत्र विदेश नीति चलाते रहे थे. हमने गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत पर काम किया. यह सब बदल कर एनडीए और यूपीए सरकार ने स्वतंत्र विदेश नीति छोड़ अमरीका के साथ सांठ-गांठ शुरू कर दी. इस भ्रम के साथ कि एक महान शक्ति के साथ जुड़ कर हम भी महान बन जाएंगे. अब जाहिर है कि किसी की मेहरबानी से तो हम महान बनेंगे नहीं. नतीजा यह हुआ कि एक पूरी रणनीतिक साझेदारी बन गयी है अमरीका के साथ. इसके कई बुरे परिणाम हैं. हम वाम दल चार साल तक लड़ते रहे इस बात को लेकर. पर जब यूपीए सरकार ने देश के सम्मान की परवाह किये बगैर परमाणु करार की दिशा में कदम बढ़ा दिया, तब हमने देशहित में समझौता वापस ले लिया. देश की जनता हमारे फैसले का पूरा सम्मान करेगी क्योंकि वह हकीकत समझ रही है. इसलिए हमारा विकल्प भाजपा और कांग्रेस के बनाए फ्रंट से ज़्यादा सीटें लेकर आएगा और सरकार हम ही बनाएंगे. और पूरे मान के साथ बनाएंगे. अब आप कांग्रेस की फजीहत चुनाव से पहले ही देख लीजिए. बिहार में उनके सबसे प्रिय मित्र लालू प्रसाद ने सिर्फ तीन सीटें छोड़ीं. उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी ने उनके लिए छह सीटें छोड़ीं. एक राष्ट्रीय पार्टी के लिए इससे बड़ी शर्म की बात क्या होगी. चर्चा यह भी चल रही है कि चुनाव के बाद वाम दल कांग्रेस को समर्थन देंगे. मैं पूछता हूं क्यों देंगे. फिलहाल इसकी संभावना बिल्कुल नहीं है. क्योंकि जब हमारी वैकल्पिक सरकार होगी, तो वह यूपीए के कई फैसलों के उलट काम करेगी. मसलन परमाणु करार. जब हम सत्ता में होंगे तो न्यूक्लियर डील को रिव्यू जरूर करेंगे. वैसे मेरा मानना है कि इसे निरस्त कर दिया जाए, पर एक अंतरराष्ट्रीय समझौते को रद्द किया जाएगा तो और कई नयी समस्याएं सामने आ सकती हैं.

हमारी वैकल्पिक सरकार की प्राथमिकता होगी खाद्य सुरक्षा. कोई भी आदमी देश में भूखा न रहे. हमारी यही कोशिश होगी. यूपीए सरकार की तरह हम सिर्फ इकोनॉमिक ग्रोथ पर ही केन्द्रित नहीं रहेंगे, जिसका लाभ देश के मुट्ठी भर लोग ही उठा सकते हैं. देश के 78 फीसदी लोगों की अभी भी रोजाना की जरूरतें पूरी नहीं हो पातीं. क्या यही आर्थिक विकास है? सामाजिक न्याय की भी परवाह सरकार ने बिल्कुल नहीं की. आदिवासी दलित लोगों का जीवन नहीं बदला. मुसलमानों की स्थिति में भी कोई सुधार नहीं हुआ. तो वैकल्पिक सरकार की जो राजनीति होगी जो शासन होगा, वह जनहित में होगा लोकहित में होगा. और मेरे ख्याल से देश की जनता इस बात को समझ चुकी है. लिहाजा पंद्रहवीं लोकसभा के लिए हो रहे चुनाव में जनता एनडीए और यूपीए को धूल चटाने के लिए कमर कस चुकी है.

एबी बर्धन

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास, राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रूपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें तो रिपोर्ट story.chauthidunia@gmail.com पर भेज सकते हैं.

दायित्व की पत्रकारिता

प्रिय मित्र संतोष भारतीय जी,

जब कोई पत्रकार किसी समाचार पत्र का संपादक हो तो दमदार पत्रकारिता, समाज में बदलाव, लोकतंत्र की मज़बूती व राजनीति में स्वच्छता की आशा जगती है और यदि वह उदयन शर्मा या संतोष भारतीय जैसा हो, तो राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के वे शब्द साकार होते दिखाई देने लगते हैं, जो उन्होंने पंडित जवाहर लाल नेहरू से लालकिले की सीढ़ियां उतरते समय क़दम डगमगाने पर कहे थे कि पंडित जी मेरा आभार व्यक्त न करें. यह मेरा दायित्व है. जब जब राजनीति के क़दम डगमगाते हैं, साहित्य उसे संभालने का काम करता है. आपने पुन: वह कार्य आरंभ करने का बीड़ा उठाया, जिसकी आज राष्ट्र को सर्वाधिक आवश्यकता है. इस अविस्मरणीय अवसर पर मैं आपको बधाई देता हूं.

आपका,

अज़ीज़ बर्नी

एडिटर, उर्दू सहारा

चौथी दुनिया के लिए कुंडली

प्रिय संपादक जी,

अमर उजाला में साप्ताहिक चौथी दुनिया का विज्ञापन पढ़ा. यह काफी सुखद सूचना है. मैं चालीस साल शिक्षण करने के बाद अब बालसाहित्य सृजन और पत्रकारिता की ओर उन्मुख हुआ हूं. मैंने चौथी दुनिया के प्रकाशन से हर्षित होकर ए कुंडली लिखी है. आपको सादर समर्पित.

चौथी दुनिया देखकर, मन में उठी हिलोर
देश-विदेश-संदेश हैं, मिला न ऐसा और
मिला न ऐसा और, वीकली पत्र निराला
साप्ताहिक सिरमौर, कभी था ज्यों मतवाला
पढ़कर यह अखबार बने हम कवि निरगुनिया
जर्नलिज्म में सबसे आगे चौथी दुनिया

शिवअवतार सरस

मालती नगर , मुरादाबाद

उम्मीद बाकी है

महोदय,

चौथी दुनिया को दोबारा प्रकाशित किए जाने की खबर मिली. सुन कर लगा कि शायद आज व्यवसायिकता के दौर में एक बार फिर वही अस्सी के दशक वाली साहसिक पत्रकारिता देखने को मिल सकेगी. लेकिन जिस तरीके से बाजार का दबाव नब्बे के दशक के बाद बढ़ा है, मन में आशंका भी होती है कि क्या ऐसा वाकई संभव हो पाएगा.

हालांकि तसल्ली इस बात की है कि संपादक आज भी वही संतोष भारतीय जी हैं जो पहली पारी में भी थे. आपको अपना नया सफ़र मुबारक हो. आप अपने उद्देश्य में कामयाब हों, यही आशा है.

आपका पुराना पाठक
प्रेमचंद मल्होत्रा
राजौरी गार्डेन
नई दिल्ली

साहस की पत्रकारिता

प्रिय संतोष भाई,

विशेष अंक का हर एक शब्द पढ़ा, मेरी बधाई स्वीकारें. आपने मीडिया जगत की सड़ांध को सामने लाने का साहस किया है, यह बहुत सुकून देने वाला है. जिम्मेदारी और जवाबदेही का आज की मीडिया में अभाव है और मुझे लगता है कि लोग इस लेख पर ध्यान देंगे. दलित लड़की की कहानी भी मार्मिक है. आज के आज़ाद भारत में भी इस तरह की घटना हो रही है और इस तरह के मुद्दों को उठाने वाला कोई नहीं है, एक लाख साठ हजार किसानों की आत्महत्या भी चुनावी मुद्दा नहीं है यह कोई आश्चर्य नहीं है.

मुझे थोड़ी और आशाएं हैं. पत्र को युवाओं और युवाओं की समस्याओं को अधिक जगह देनी चाहिए. पत्र को उनके साथ एक संबंध बनाना चाहिए. मुसलमान इस देश में सबसे ज्यादा भूले-बिसरे हैं. यह स्थिति मुसलमानों के लिए खतरनाक है. मुझे लगता है कि उन पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है. राजनीतिक रूप से हाशिए पर जी रहे लोगों को ज्यादा जगह दी जानी चाहिए.

कुमार राजीव

जब तोप मुकाबिल हो...

हमारी बिरादरी की जय हो

क्या हमारी दुनिया सचमुच अंधेरी और अंधी होती जा रही है? हमारी दुनिया से मतलब हम पत्रकारों की दुनिया से है. हम इसलिए यह बात उठा रहे हैं क्योंकि पत्रकारों को अलिखित अधिकार मिले हैं जिनका सभी सम्मान करते हैं. लोकतंत्र की सर्वमान्य धारणा है कि विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका की तरह मीडिया भी समान अधिकार संपन्न क्षेत्र है और उसे तीनों पर सार्थक और सही टिप्पणी का अधिकार है. किसी को भी कहीं भी रोक कर सवाल पूछने का हक़ सिर्फ पत्रकारों का माना गया है और लोग भी उस हक़ की इज्ज़त करते हैं. आम लोगों के बीच अब तक यह विश्वास बना हुआ है कि जब कहीं भी उनकी सुनवाई न हो, कोई भी बात नहीं सुने तो पत्रकारों के पास चले जाओ. वे ज़रूर बात सुनेंगे और जब छापेंगे या दिखाएंगे, तो सरकार का वह व्यक्ति जो उनके दुख-का जिम्मेदार है, जवाब देने को मजबूर होगा.

हम इन कसौटियों से जुड़े अधिकारों का तो जम कर उपयोग करते हैं, लेकिन उसकी जिम्मेदारियां नहीं उठाते. इन जिम्मेदारियों को न उठाने का परिणाम अपने सबसे बुरे स्वरूप में हमारे सामने आ रहा है. पहले कहा जाता था कि थोड़ी शराब पिला दो और जो चाहे लिखवा लो. धीरे-धीरे बात काम कराने की, ठेकेदारी तक पहुंच गई और आज हमारे ही पेशे के कई बड़े और छोटे साथी काम कराने का ठेका लेने लगे हैं.

चाहे अक्षरों की दुनिया हो या तस्वीरों की दुनिया, गंदी मछलियां हर जगह दिखाई दे रही हैं. पीआर जर्नलिज्म की एक नई श्रेणी पैदा हो गई है जो राजनैतिक दलों या बड़े घरानों को सलाह देती है कि कैसे उन्हें अपनी ताकत और साख बढ़ानी चाहिए. जब चुनाव आते हैं, तो चाहे बड़े पत्रकार हों या छोटे, वे अपने-दलों के रणनीतिकार में तब्दील हो जाते हैं. वे अपनी टोली बनाते हैं और प्रचार का हिस्सा बन जाते हैं. सबसे बुरी हालत तो अब हो गई है. पिछले आम चुनाव से यह बीमारी खुले आम सामने आ गई है और कोई इसे छिपाना नहीं चाहता. अखबारों ने और टेलीविजन चैनलों ने अपने संवाददाताओं से कहा कि आप उम्मीदवारों से पैसे लीजिए और उनकी रिपोर्ट छापिए या दिखाइए. एक संपादक जो मालिक हैं, उन्होंने अपने संवाददाताओं से भरी मीटिंग में कहा कि हम जानते हैं कि आप लोग चुनावों में लिखने का पैसा लेते हैं. अब आप हमारे बताए रेट पर पैसा लीजिए और अपना कमीशन उसमें से लीजिए. मीटिंग में मौजूद एक भी संवाददाता ने प्रतिवाद नहीं किया कि वे ऐसा नहीं करते. बड़े राजनैतिक दल टेलीविजन के बड़े पत्रकारों को व्यक्तिगत रूप से और चैनलों को संस्था के रूप में मोटी रकम देते हैं ताकि वे उनके बारे में प्रचार न करें तो कोई बात नहीं, लेकिन हानि पहुंचाने वाली रिपोर्ट तो न ही दिखाएं. अगर कोई अखबार या चैनल इससे इनकार करता है, तो हम उसे अपवाद मान कर अपनी गलती की क्षमा मांग लेंगे. पर यदि सभी ऐसा करते हैं, तो हमें इस कहानी के विद्रूप स्वरूप को सामने लाने का हक़ होगा.

इस सारे क्षरण में आम आदमी की तकलीफें हमारे एजेंडे से गायब हो गई हैं और परिणाम सामने आ रहा है कि वह हम पर विश्वास खोता जा रहा है. यह अजीब अंतर्विरोध है कि जिसके लिए मीडिया की बुनियादी प्रतिबद्धता है, वही मीडिया पर भरोसा नहीं करता या कम भरोसा करने लगा है.

प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट और पत्रकार सुधीर तैलंग जब मिलने आए, तो व्यथा से बोले कि पिछले पांच सालों की पांच ऐसी रिपोर्टें याद नहीं आ रही हैं जिनका संबंध आम लोगों से रहा हो. संतोष तिवारी मिलने आए तो कहने लगे कि इतनी ज्यादा घुटन है कि नौकरी छोड़ने का मन कर रहा है. साथ ही कहा कि पत्नी का कहना है कि पत्रकारिता करो, नहीं तो तुम टूट जाओगे. ऐसे नामों की लंबी फेहरिस्त है, पर सवाल है कि आखिर यह स्थिति आ क्यों रही है. क्यों खबर से, खबर तलाशने की मेहनत से, पाठक को सही बात बतलाने से और पाठक के पक्ष में खड़े होने से हम घबरा रहे हैं. किसका दबाव पत्रकारिता के पेशे पर है, क्या बाज़ार हमें यह कहता है कि समाचार या जो घट रहा है, उसे न दिखाएं या छापें. क्या मालिक संपादकों को इसके लिए विवश कर रहे हैं या संपादक ही पत्रकारों को समाचार के अलावा सब कुछ लिखने या दिखाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं.

मेरा मानना है कि जितना हम अपने कर्तव्य से दूर जाएंगे, उतना हम देश को खतरे में डालेंगे.जितना ज्यादा समाचारों का या जानकारी का संप्रेषण सीमित होगा, उतना ही देश में अविश्वास बढ़ेगा. यह अविश्वास वर्गों के बीच का हो सकता है, धर्मों के बीच का हो सकता है, जातियों के बीच का हो सकता है और जनता तथा सरकार के बीच का हो सकता है. और यहीं मीडिया का रोल आता है कि वह यह सब न होने दे. अगर मीडिया की चूक, भूल या जान-बूझ कर की गई गलती की वजह से अविश्वास बढ़ता है तथा हम अराजकता की ओर बढ़ते हैं, तो इसका सबसे पहला असर हम पर यानी मीडिया पर ही पड़ने वाला है. अगर सत्ता को हमने यह अहसास करा दिया कि हम मैनेज हो सकते हैं, तो हमें आगे सेंसरशिप के लिए तैयार रहना चाहिए. और यदि विपक्ष को हमने यह संकेत दिया कि हम आसानी से प्रभावित किए जा सकते हैं, तो हमें गोली और लाठी से दबने की दिमागी तैयारी रखनी चाहिए.

संपादकों, पत्रकारों और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के लोगों को अगर अब भी संभलना न आया या उन्होंन संभलना ना चाहा, तो अगले पांच साल यानी पंद्रहवीं लोकसभा के कार्यकाल के बाद उन्हें संभलने का मौका ही नहीं मिलेगा. लोकतंत्र के नाम पर ऐसी ताकतें सामने आ रही हैं, जिनका लोकतंत्र में भरोसा ही नहीं है. उसी तरह पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी पैठ बढ़ रही है जो पत्रकारिता के सिद्धांतों को तोड़ने में अपनी शान समझते हैं. अगर गांधीजी और सुभाष चंद्र बोस के जन्मदिन पर उनकी याद मीडिया को ना आए, तो मानना चाहिए कि हमारा यानी मीडिया का नेतृत्व लिलिपुटियंस के या बौने पत्रकारों के हाथ में है.

पर ऐसे पत्रकारों की भी कमी नहीं है जो खामोश तो हैं, पर वे ऐसी स्थिति को स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं.इन सब को मिल कर अपने-अपने संस्थानों में आवाज़ बुलंद करनी होगी और बौने पत्रकारों को उनका धर्म याद कराना होगा. एक वक्त ऐसा आता है जब बोलना परम कर्तव्य बन जाता है और पत्रकारिता के क्षेत्र में चल रही अराजक स्थिति, ग़लत परिभाषा और पत्रकारिता की बुनियाद को हिलाने वाली गतिविधियों के विरुद्ध हाथ उठाना ऐतिहासिक कर्तव्य बन जाता है. हमें ऐसी ही तोपों का मुकाबला करना है और ऐसे दोस्तों की तलाश भी करनी है जो तोप का मुकाबला करने में न केवल साथ दें, बल्कि नेतृत्व भी करें.

संपादक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

इंदिरा गांधी के पोते वरुण गांधी को जानें

अब वरुण गांधी कहते हैं कि वे हिंदू हैं. हिंदू उनका धर्म है. तो क्या वरुण गांधी ने अपना धर्म बदल लिया है या वे अपने पिता और दादा के धर्म को गलत मानते हैं? इसका जवाब केवल वरुण दे सकते हैं, जो हिंदू धर्म में आकर मुसलमानों के हाथ काटने या उन्हें ओसामा बिन लादेन जैसे नाम से तुलना कर खतरनाक बता रहे हैं. इतना ही नहीं, वह मुस्लिम औरतों के नाम, जिनके आगे खातून लगा है, डरावने बता रहे हैं. दरअसल अब वरुण जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गांधी और शायद अपने पिता की राजनीतिक समझ को खारिज कर रहे हैं और करें भी क्यों न, जब उन्हें महात्मा गांधी ही बेवकूफ नज़र आ रहे हों. जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में उनके नाना, उनके दादा, उनकी दादी, उनके परदादा तक को न केवल सीख दी बल्कि आगे बढ़ाया. गांधी जी न होते तो नेहरू जी प्रधानमंत्री न होते और नेहरु जी न होते, तो कौन वरुण गांधी को जानता. जब वरुण कहते हैं कि गांधी का कहना कि एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो अपना दूसरा गाल आगे बढ़ा दो, इससे बड़ी बेवकूफ बात मैंने सुनी ही नहीं. मैं इसे नहीं मानता. जो तुम्हारे गाल पर थप्पड़ मारे, तुम उसका हाथ तोड़ दो. वरुण गांधी की अज्ञानता का पता इसी मे चलता है कि उन्हें नहीं पता कि यह वाक्य ईसा मसीह ने पहले कहा और महात्मा गांधी ने उसे अपने जीवन में उतार देश में अहिंसा का पर्यायवाची बना दिया.

वरुण गांधी का बयान तो आने वाले आम चुनावों की एक बानगी है और हम कह सकते हैं कि आगे-आगे देखिए होता है क्या? टेलीविज़न और अखबारों में वरुण गांधी के भाषणों के टेप और उनके कहे लफ़्ज़ छप रहे हैं. वरुण गांधी के लफ्ज गुस्सा नहीं दिलाते, बल्कि शर्म से इंसानियत को कत्ल करते दिखाई देते हैं. वैसे वरुण गांधी पर लिखने में वक्त खराब करने का कोई मतलब नहीं है पर लिखना इसलिए पड़ रहा है, क्योंकि वह एक बड़ी साजिश की छोटी कड़ी मात्र हैं.

साजिश की परिस्थितियों के विश्लेषण से ही जाना जा सकता है. चुनाव आयोग ने भाजपा से कहा कि वरुण दोषी हैं, उन्हें टिकट न दिया जाए. जवाब में भाजपा ने कहा कि यह काम चुनाव आयोग का नहीं है, और जो भाजपा वरुण से पहले दूर खड़ी नज़र आ रही थी, वह अचानक उनके बचाव में दिखाई देने लगी. यही भाजपा की असली रणनीति है.

वरुण गांधी संजय गांधी के बेटे हैं और संजय गांधी फिरोज़ गांधी के बेटे थे. फिरोज़ गांधी और इंदिरा गांधी का प्रेम विवाह हुआ था और उनकी शादी महात्मा गांधी ने करायी थी. इंदिरा गांधी के परिवार के लोग पहले इस शादी से सहमत नहीं थे, क्योंकि फिरोज़ गांधी पारसी थे. फिरोज़ गांधी और जवाहर लाल नेहरु की कभी नहीं बनी, क्योंकि जवाहर लाल नेहरु कभी फिरोज़ गांधी को माफ नहीं कर पाये. इंदिरा गांधी ने भी पति और पिता में पिता को चुना क्योंकि नेहरू न केवल अकेले थे बल्कि उनका राजनीतिक वारिस भी कोई नहीं था. फिरोज़ चाहते थे कि बच्चों के साथ इंदिरा गांधी उनके साथ रहें, जो कभी इंदिरा गांधी ने माना नहीं. फिरोज़ गांधी की मौत भी जल्दी हो गयी और इंदिरा गांधी राजीव गांधी और संजय गांधी के साथ नेहरु जी के पास ही हमेशा रहीं. फिरोज़ गांधी से राजीव गांधी का लगाव जितना था, छोटे बेटे संजय गांधी का लगाव उससे कहीं ज्यादा था. संजय गांधी अपने पिता के रिश्तेदारों से अक्सर मिलते थे और स्वयं को दोस्तों के बीच संजय फिरोज़ गांधी कह कर परिचित कराते थे. संजय स्वयं को पारसी कहलाना पसंद करते थे. मुझे याद नहीं कि उन्होंने कभी धर्म बदलने की बात की हो. उन्होंने सिख लड़की मेनका से शादी की, जो कि शादी के बाद मेनका गांधी हो गयीं. पारसी धर्म पति के धर्म में बदल जाता है, और ऐसा लगभग हर धर्म में है. यदि स्पेशल मैरिज एक्ट में शादी हो, तो मां, बाप अलग-अलग धर्म रख सकते हैं, पर बच्चों का धर्म पिता के धर्म से पहचाना जाता है.

अब वरुण गांधी कहते हैं कि वे हिंदू हैं. हिंदू उनका धर्म है. तो क्या वरुण गांधी ने अपना धर्म बदल लिया है या वे अपने पिता और दादा के धर्म को गलत मानते हैं? इसका जवाब केवल वरुण दे सकते हैं, जो हिंदू धर्म में आकर मुसलमानों के हाथ काटने या उन्हें ओसामा बिन लादेन जैसे नाम से तुलना कर खतरनाक बता रहे हैं. इतना ही नहीं, वह मुस्लिम औरतों के नाम, जिनके आगे खातून लगा है, डरावने बता रहे हैं. दरअसल अब वरुण अपने नाना जवाहर लाल नेहरू, दादी इंदिरा गांधी और शायद अपने पिता की राजनीतिक समझ को खारिज कर रहे हैं और करें भी क्यों न, जब उन्हें महात्मा गांधी ही बेवकूफ नज़र आ रहे हों. जिन्होंने आज़ादी की लड़ाई में उनके नाना, उनके दादा, उनकी दादी, उनके परदादा तक को न केवल सीख दी बल्कि आगे बढ़ाया. गांधी जी न होते तो नेहरू जी प्रधानमंत्री न होते और नेहरु जी न होते, तो कौन वरुण गांधी को जानता. जब वरुण कहते हैं कि गांधी का कहना कि एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो अपना दूसरा गाल आगे बढ़ा दो, इससे बड़ी बेवकूफ बात मैंने सुनी ही नहीं. मैं इसे नहीं मानता. जो तुम्हारे गाल पर थप्पड़ मारे, तुम उसका हाथ तोड़ दो. वरुण गांधी की अज्ञानता का पता इसी मे चलता है कि उन्हें नहीं पता कि यह वाक्य ईसा मसीह ने पहले कहा और महात्मा गांधी ने उसे अपने जीवन में उतार देश में अहिंसा का पर्यायवाची बना दिया. वरुण ने तो ईसा मसीह और महात्मा गांधी को बेवकूफ कह अपने को उनसे समझदार और बुद्धिमान साबित करने की कोशिश की है. वरुण के रिश्तेदार तो खुले आम, जिसमें उनके मामा भी शामिल हैं, कह रहे हैं कि वरुण तो इस तरह की भाषा पिछले साल भर से बोल रहे हैं. सिखों के वह खिलाफ हैं, दर्जनों बंदूकधारियों के साथ चलते हैं. सभी को डराते हैं और राजनीति में एक नये बाहुबली की तरह अपनी पैठ बनाना चाहते हैं. दरअसल वरुण गांधी सचमुच पूरी तरह सांप्रदायिक संस्कृति के रंग रूप में बस गये हैं. कैसे, यह आगे देखेंगे, पर पहले कुछ और बातें जानते हैं.

गांधी परिवार, जिसका नाम इंदिरा गांधी से जाना जाता है, की परंपरा सेक्युलर रही है. वह मुल्क में अल्पसंख्यकों, विशेषकर मुसलमानों के हितों की सबसे ज्यादा पैरोकार रही है और जब तक वह जिंदा रहीं, मुसलमान उन्हें अपना पूरा समर्थन देते रहे. इंदिरा गांधी कभी वरुण गांधी के पिता और अपने छोटे बेटे संजय गांधी की मेनका गांधी से शादी को माफ नहीं कर पायी, क्योंकि यह शादी उनकी मर्जी से नहीं हुई थी.

संजय गांधी की हवाई जहाज दुर्घटना में मौत के बाद इंदिरा गांधी और मेनका गांधी में हुए मतभेद आमने-सामने आ गये और एक दिन मेनका ने संजय विचार मंच बना लिया. वह संजय विचार मंच के प्रचार के लिए पांच दिनों के लिए घर से निकलीं तो वापस इंदिरा गांधी ने उन्हें घर में नहीं आने दिया. वरुण गांधी इसे भूल नहीं पाये और आज उन्हें इंदिरा गांधी की पूरी राजनैतिक समझ ग़लत लगती है.

वरुण के रिश्तेदार, जिनमें उनके मामा भी हैं, बताते हैं कि कोई साल भर से उनकी भाषा बदली हुई लग रही है.

वरुण का मानना है कि इंदिरा गांधी को भड़काने के पीछे उनकी ताई सोनिया गांधी का हाथ है, जो मेनका को राजनैतिक रूप से तो आगे बढ़ते देखना ही नहीं चाहती. बल्कि उनके पिता संजय गांधी को भी पसंद नहीं करती थीं. वह सोनिया गांधी के दिल से खिलाफ हैं और उनके मन में नफरत भी है, पर वह राहुल और प्रियंका से लगातार मिलते रहते थे और तीनों भाई बहन सप्ताह में एक बार खाना जरूर खाते थे. मेनका ने उन्हें प्रियंका और राहुल से मिलने से कभी नहीं रोका. उन्होंने वरुण को देश-दुनिया और पर्यावरण के बारे में खूब जानकारियां दीं. मेनका चाहती थीं कि वरुण मुल्क की हर बात जानें और राजनीति में आगे बढ़ें, पर मेनका गांधी वरुण के मन में जगी इंदिरा गांधी और सोनिया गांधी के प्रति नफरत को कम नहीं कर पायी. शायद वह करना नहीं चाहती थीं. इसी बीच वह भाजपा में शामिल हो गयीं. यहीं से वरुण के जीवन में संघ के प्रथम पुरुष के सुदर्शन का प्रवेश हुआ. वरुण लोकसभा का चुनाव लड़ना चाहते थे, पर अटल बिहारी वाजपेयी और आडवाणी का समर्थन उन्हें नहीं मिल पा रहा था. सुदर्शन जी के मन में वरुण को लेकर योजनाएं बनने लगीं और उन्होंने वरुण के मन की नफरत को हवा देना शुरू किया.

पिछले आम चुनाव के बाद वरुण भाजपा छोड़ना चाहते थे, लेकिन सुदर्शन ने उन्हें रोका. पिछले बिहार चुनाव के बाद भी वरुण नाराज़ थे और मानते थे कि भाजपा उनके नाम के आगे लगे गांधी शब्द का फ़ायदा नहीं उठा रही है. मेनका गांधी का भी यह मानना रहा है कि देश को गांधी की ज़रुरत है और वह खुद इस कमी को पूरा कर सकती हैं. पिछले तीन साल में संघ के प्रमुख के. सुदर्शन ने वरुण को तैयार किया और उनके मन की नफरत को एक नया रूप दिया. मुसलमानों के प्रति आग उगलने वाले एक पुतले में उन्हें बदल दिया. वरुण अब संघ के बहके हुए उग्रवादी जैसे रोबोट के रूप में तब्दील हो चुके थे, जिसका इस्तेमाल इस चुनाव में संघ ने सोच समझ कर किया. वरुण का भाजपा नेताओं से बहुत ज्यादा संपर्क था ही नहीं, वह तो झंडेवालान ही ज्यादा आते-जाते थे.

भाजपा की खामियों को ढंकने सुदर्शन आगे आये थे क्योंकि उन्हें लगता था कि उनके पास ज़िंदगी के कम दिन बचे हैं. हालांकि उन्हें इसका मौका नहीं मिल पाया. उनकी योजना थी कि भाजपा को ज्यादा से ज्यादा सीटें जितवायी जाए ताकि भाजपा अपने सहयोगी दलों के बिना ही सरकार बना सके. लेकिन उन पर कुछ ताकतों ने भरोसा नहीं किया, इसलिए अचानक मोहन भागवत को नये सरसंघचालक के रूप में सामने लाया गया. आडवाणी को संघ एक मुखौटा भर मानता है लेकिन नरेंद्र मोदी को सच्चाई. पर संघ का मानना है कि मोदी की मास अपील उत्तर भारत में कम है, इसलिए उसे एक नए मोहरे की तलाश थी और वरुण को उसने इस्तेमाल कर लिया. वरुण के भाषण की सीडी भी प्रेस को भाजपा के उन्हीं लोगों ने पहुंचायी, जिन्होंने वरुण के भाषण की आधिकारिक रिकार्डिंग प्राइवेट वीडियोग्राफर से करवायी थी. कांग्रेस के लोग तो इसमें इस्तेमाल हुए और वरुण गांधी नाम के संघ के नये मोहरे ने देश भर में चुनाव को सांप्रदायिक बनाने की शुरुआत पीलीभीत से कर दी. लेकिन वरुण डर गए. उन्होंने कहा कि चेहरा उनका है, आवाज़ किसी और की. वह इलाहाबाद और दिल्ली हाईकोर्ट चले गये. भाजपा ने सोची-समझी रणनीति के तहत उन्हें अपने केंद्रीय कार्यालय से प्रेस कांफ्रेंस नहीं करने दी. मुख्तार अब्बास नकवी और शाहनवाज़ खान ने पहले तो ईमानदारी से वरुण का विरोध किया, पर बाद में अपनी आवाज़ ठंडी कर बात को रफा-दफा करने की अपील कर डाली. भाजपा का वरुण के जरिए यह लिटमस टेस्ट था.

यह आगाज़ बताता है कि भाजपा वरुण को उत्तर भारत में उग्र भाजपा के अतिवादी चेहरे के रूप में घुमाएगी और नौजवानों को सांप्रदायिक चाशनी बांटेगी ताकि वह अकेली ही दो सौ से ज्यादा सीटें जीत सकें. चुनाव आयोग की वरुण के खिलाफ कार्रवाई की सलाह के बाद तो संघ उन्हें शहीदी चोले के साथ संघ अपने सभी संगठनों के कंधों पर देश भर में घुमाएगा. देश में आग लगे या दंगे हों, लोकतंत्र ज़िंदा रहे या दफन हो जाए. अटल बिहारी वाजपेयी जैसों के आदर्शों को आग लगे या नेहरु जी, इंदिरा जी और फिरोज़ गांधी की आत्मा कराहे, किसे परवाह है. सबको बहुत कुछ मिल जाएगा, पर मेनका गांधी और उनके बेटे को क्या आखिर में मिलेगा, इसका फैसला तो बाद में होगा, पर इतना तय है कि देश का इतिहास उस तरह तो याद नहीं करेगा, जैसा उसने इंदिरा गांधी और फिरोज़ गांधी को याद किया था. कोई मेनका गांधी को तो जाकर देखे कि उनकी आंख में आंसू हैं या होंठों पर मुस्कराहट. कोई उनसे पूछे तो कि दूधमुंहे बच्चे को बिना बाप के अकेले पालने वाली अपनी जवानी होम कर देने वाली नौजवान खूबसूरत मेनका ने सारे सुख त्याग कर, क्या ऐसे ही वरुण को देश को सौंपने का सपना देखा था? जानवरों के लिए किसी से भी टकरा जाने की ताकत रखने वाली मेनका गांधी क्या ऐसे ही बेटे की मां कहलाना चाहती थीं, जो ज़िंदा इंसानों के हाथ काटने या सर काटने की बात कहता हो. आशा करनी चाहिए कि मेनका ने ऐसे बेटे का सपना नहीं देखा होगा. यह तो कोई और वरुण है, जिसे न मेनका जानती है और न हम सब.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

अंधेरे युग में झारखंड

झारखंड में भ्रष्टाचार संक्रामक है. राष्ट्रपति शासन लोगों के लिए काफी राहत लेकर आया है. गठबंधन सरकारें आती हैं और जाती हैं. चेहरे बदल जाते हैं. लोग बदल जाते हैं. पार्टी बदल जाती है. सत्ता बदल जाती है. कुछ अगर नहीं बदलता तो वह है भ्रष्टाचार.

प्रयाग अकबर

सरजू राय झारखंड के वरिष्ठ नेता हैं. वहां इस साल जनवरी में राष्ट्रपति शासन की घोषणा के पहले तक वह विधायक थे. झारखंड की मौजूदा हालत से वह काफी दुखी हैं. वह गुस्साते हुए कहते हैं कि झारखंड की मौजूदा हालत को बयान करने के लिए भ्रष्टाचार तो बहुत छोटा शब्द है. हम तो यह महसूस करते हैं कि झारखंड में व्यवस्था पूरी तरह से खत्म हो चुकी है. इसका दुखद हिस्सा यह है कि विधानसभा ही इस भ्रष्टाचार का केंद्र बन चुकी है. हरेक चीज़ की शुरुआत वहीं से होती है. सरकार का पर्याय लूट बन चुका है.

रांची में आप किसी भी आदमी से मिलें और वह आपको वरिष्ठ नौकरशाहों, छोटे-बड़े राजनेताओं, पुलिस अधिकारियों और जजों के भ्रष्टाचार की कोई-न-कोई कहानी बता देगा. जब भ्रष्टाचार की जानकारी सार्वजनिक हो जाती है, तो कुछ बहाना बना दिया जाता है, फाइलें खुलती हैं और फिर कुछ नहीं होता है. जांच होती है, जिसके बाद कोई गिरफ्तारी नहीं होती है. मामले एक से दूसरी अदालत में जाते रहते हैं. हालांकि नतीजा कुछ नहीं निकलता. नौकरशाहों का एक से दूसरी जगह तबादला कर दिया जाता है. आखिरकार जब सब एक ही नाव के सवार हों, तो नीतियां कौन लागू करेगा.

झारखंड राज्य की स्थापना वर्ष 2000 में बिहार रिऑर्गेनाइज़ेशन एक्ट के तहत हुई. इसके बाद से ही राज्य के लोगों और संसाधनों का शोषण इलाके के कई वरिष्ठ नेता करते रहे, जिन्होंने संसाधनों की लूट कर नकद, संपत्ति और दूसरी तरह की परिसंपत्तियां बनाईं.

वर्ष 2005 के चुनाव के बाद-जिसका नतीज़ा एक बार फिर विभाजित सदन में हुआ-भ्रष्टाचार इस हद तक बढ़ा कि नवंबर 2008 में एक जागरूक नागरिक ने राज्य के छह काबीना मंत्रियों के खिलाफ जनहित याचिका दायर कर दी. उनका कहना था कि आय से अधिक संपत्ति रखने के मामले में इन मंत्रियों का जवाब नहीं है. जनहित याचिका में ग्रामीण निर्माण के पूर्व मंत्री हरिनारायण राय, पूर्व परिवहन मंत्री एनोस एक्का, ग्रामीण विकास मंत्रालय के पूर्व मंत्री कमलेश सिंह (जो सिंचाई, उत्पाद शुल्क, खाद्य एवं वितरण के भी विभाग देखते थे), भूमि व राजस्व विभाग के मंत्री दुलाल भुइयां, स्वास्थ्य विभाग के मंत्री भानु प्रताप शाही, मानव संसाधन विकास मंत्री बंधु टिर्की और विधायक चंद्र प्रकाश चौधरी पर आरोप लगाए गए थे.

इसी साल की 12 फरवरी को रांची में निगरानी विभाग ने एनोस एक्का और हरिनारायण राय (इन दोनों के ऊपर सबसे अधिक संपत्ति इकट्ठा करने का आरोप है) के घरों पर छापे मारे थे. छापे मंत्रियों के आधिकारिक आवास (डोरंडा) और पैतृक निवास, दोनों ही जगहों पर मारे गए. इन छापों में चल-अचल संपत्ति के 10 करोड़ रुपए मूल्य के कागज़ात भी मिले. ये छापे जनहित-याचिका का प्रत्यक्ष नतीज़ा थे, लेकिन यह जानना मज़ेदार होगा कि विशेष निगरानी कोर्ट के ये नतीज़े तभी आए, जब जनवरी 2009 में राष्ट्रपति शासन लगा था.

पुलिस महानिदेशक (निगरानी विभाग) नियाज अहमद बताते हैं कि वह किस तरह इस मामले पर काम कर रहे हैं. अहमद बताते हैं कि छापों के बाद से ही पुलिस ने हरि नारायण और एनोस एक्का के छि लाफ मामला बनाने में काफी प्रगति की थी, पर अब उन्होंने अपनी रिपोर्ट हाई कोर्ट के सामने रख दी है. अब वही पुलिस या सीबीआई को बताएगी कि मामले को कब आगे बढ़ाना है. उसके बिना कुछ नहीं किया जा सकता.

जब अहमद से पूछा गया कि क्या वह जनहित याचिका में नामित पांच और राजनीतिज्ञों के खिलाफ कार्रवाई करने की सोच रहे हैं, तो वह इस मामले में बिल्कुल स्पष्ट थे. उनका कहना था कि यह प्रोटोकॉल का मामला है और वह उन पांचों मामलों में कुछ नहीं करेंगे. अहमद का कहना था कि वह तभी इन मामलों की जांच करेंगे जब विशेष निगरानी कोर्ट इस तरह का कोई निर्देश देगी.

हरि नारायण राय के खिलाफ मामला कुछ इस तरह का है. जब यह आदिवासी नेता झारखंड विधानसभा में वर्ष 2005 में चुन कर आया था तो उसने अपनी संपत्ति कुछ इस तरह बताई थी-नकद 40,000 रुपए, राष्ट्रीय बचत पत्र के तौर पर 1.25 लाख रुपए, 50,000 रुपए मूल्य के गहने, कृषि योग्य पांच एकड़ ज़मीन और खापरपोस में एक घर. अपने निर्वाचन के पहले राय ने कभी आयकर नहीं भरा था, तो इसका मतलब है कि उनकी आय न्यूनतम आयकर स्तर के नीचे ही थी. विधायकी के अपने 39 महीनों में राय को वेतन के तौर पर केवल 15 लाख 39 हज़ार रुपए मिले थे. इसके बावजूद वर्ष 2008 तक उनकी चल-अचल संपत्ति अविश्वसनीय तरीके से बढ़कर 30.18 करोड़ रुपए मूल्य की हो गई. इसमें रांची में और उसके आस-पास ज़मीन के टुकड़े, कारों के जत्थे, डेरी फर्म और राजधानी के पॉश इलाकों में बड़े बंगले-जिनमें से कुछ खुद के नाम पर, कुछ बीवी के नाम पर और कुछ नज़दीकी रिश्तेदारों के नाम पर थे.

इसी तरह के आरोप याचिका में नामित दूसरे मंत्रियों पर भी हैं. भानु प्रताप शाही पर गुड़गांव के डीएलएफ इलाके में करोड़ों की संपत्ति बनाने का आरोप है, जहां वह एक शॉपिंग मॉल बनवा रहे हैं. जनहित याचिका में यह भी आरोप है कि पूर्व खेल मंत्री बंधु टिर्की ने दिल्ली के बसंत बिहार इलाके में आठ करोड़ रुपए का बंगला खरीदा है.

इसका भुगतान आंध्र प्रदेश में स्थित आधारभूत निर्माण कंपनी नागार्जुन कंस्ट्रक्शंस की तरफ से हुआ. करीबन 100 पन्नों में याचिकाकर्ता ने काफी तफसील से भ्रष्टाचार की कई घटनाओं के बारे में जानकारी दी है.

कमलेश सिंह उत्पाद शुल्क मंत्री थे, मधु कोड़ा और शिबू सोरेन, दोनों के ही कार्यकाल में. कथित तौर पर उनके संबंध झारखंड में ऐसे समूह से हैं, जिसे सिंडिकेट के नाम से जाना जाता है. यह सिंडिकेट उन व्यापारियों का समूह है जो कमलेश सिंह के कार्यकाल के दौरान राज्य में घरेलू और देशी शराब की आपूर्ति पर नियंत्रण करते थे और सरकारी दुकानों से करीब 16 करोड़ की शराब बेचते थे. कमलेश के कार्यकाल में शराब बेचने के लिए निविदा निकाल कर ठेके तय करने का नियम था लेकिन सरकार पर अपने प्रभाव का फायदा उठाते हुए सिंडिकेट ने बिना किसी निविदा के ठेकों पर कब्ज़ा कर लिया. फिर भी तीन बड़े जिलों -रांची, धनबाद, जमशेदपुर का ठेका इन्हें नहीं मिला. जब इन जिलों का ठेका सिंडिकेट को नहीं मिल पाया तो उन्होंने सरकार पर दबाव डालने के लिए सारे प्रदेश की शराब आपूर्ति बंद कर दी. इस दौरान रोजाना सरकार को 50 लाख के राजस्व का घाटा हुआ.

एनोस एक्का, जो राज्य के बड़े नेता हैं, पर गैरकानूनी तरीके से आदिवासी जमीन हड़पने का आरोप है (यह जमीन उन्होंने अपनी पत्नी के नाम पर खरीदी है). मामला 1908 के छोटानागपुर टीनेंसी एक्ट के भाग 46 के उल्लंघन का है. यह एक्ट आदिवासियों की जमीन के दूसरे मूल के आदिवासियों के द्वारा खरीद को रोकता है. फिर भी, एनोस एक्का रांची के आसपास की कई जमीनों के मालिक हैं जबकि वह खुद सिमडेगा के निवासी हैं. एक्का ने जमीन हथियाने के लिए हर बार अपनी पत्नी का अलग पता बतलाया जो कि साफ तौर पर जमीन हथियाने के लिए धोखाधड़ी है. यहां राजनेताओं और अधिकारियों के बीच का गठजोड़ भी साफ हो जाता है. जैसा कि जनहित याचिका में कहा गया है कि यह सब उन अधिकारियों की मदद के बिना संभव नहीं था जो मंत्रियों को धन या कृपा पाने के बदले इन उल्लंघनों के परिणाम से बचा लेते हैं. याचिका रांची के उपायुक्त, रांची, ओरमांझी और नामकुम के सर्किल अफसरों पर भी सवाल उठाती है जो एक्का के घोटाले में साझीदार बताए गए हैं.

घाटकुरी खदान के पट्टों का मामला भी भ्रष्टाचार का अद्भुत उदाहरण है. यह मानी हुई बात है कि झारखंड प्राकृतिक संसाधनों से लैस राज्य है. प्रकृति ने इसे खनिज-संपदा से भरपूर बनाया है. इसका सीधा सा मतलब है कि इस्पात, लौह-अयस्क, कोयला

जब भ्रष्टाचार की जानकारी सार्वजनिक हो जाती है, तो कुछ बहाना बना दिया जाता है, फाइलें खुलती हैं और फिर कुछ नहीं होता है. जांच होती है, जिसके बाद कोई गिरफ्तारी नहीं होती है. मामले एक से दूसरी अदालत में जाते रहते हैं. हालांकि नतीजा कुछ नहीं निकलता. नौकरशाहों का एक से दूसरी जगह तबादला कर दिया जाता है. आखिरकार जब सब एक ही नाव के सवार हों, तो नीतियां कौन लागू करेगा.

और इस तरह के संसाधनों से जुड़े बड़ी कॉरपोरेट कंपनियों की यहां मौजूदगी होगी ही. इसी वजह से इन संसाधनों से जुड़े विभागों में जमकर भ्रष्टाचार भी होता है. अफसरों और मंत्रियों की मिलीभगत से इनकी खुली लूट होती है. जैसा कि एक बड़ी इस्पात कंपनी के उच्चपदस्थ अधिकारी ने हमें बताया कि झारखंड में व्यापार करना असंभव है, अगर आप रिश्वत न दें. नौकरशाह और राजनेता आपसे इसी की उम्मीद रखते हैं. अगर आपने उनको पैसे नहीं दिए तो काम करना असंभव ही है.

घाटकुरी लौह-अयस्क खदान से जुड़ा बवाल भी ऐसा ही एक मामला है. यहां आरोप और प्रत्यारोपों से मामला इस कदर गरम हो गया है कि बात सुप्रीम कोर्ट तक पहुंच गई है. नाम न बताने की शर्त पर रांची के एक बड़े अधिकारी ने हमें बताया कि मामले में जो भी हुआ, वह काफी अजीब था.

कई कंपनियां घाटकुरी खदानों पर कब्जा चाहती थीं. हालांकि इन खदानों को केवल सार्वजनिक उपक्रमों को ही दिया जाना था. शिबू सोरेन के नेतृत्व वाली सरकार के समय में इस तरह का एफिडेविट दाखिल किया गया कि खदानों की लीज़ निजी कंपनियों को भी दी जा सकती हैं. हालांकि, भारत के माइनिंग एंड मिनिरल्स रेगुलेशन डेवलपमेंट एक्ट के तहत यह नियम है कि खनन के पट्टे उन्हीं कंपनियों को दिए जा सकते हैं, जिन्होंने पहले ही इन इलाकों में काम किया है. हालांकि छह ऐसी कंपनियों को इनके पट्टे दिए गए, जिनका पहले का कोई कार्य-अनुभव इस क्षेत्र में नहीं था. ज़ाहिर है, इस पूरे मामले में बड़े पैमाने पर पैसों का लेन-देन हुआ.

ऐसा इस वजह से कि कई सार्वजनिक उपक्रमों जैसे सेल, एन एम डी सी, जे ए एम डी सी (हालांकि कायदे की बात तो यही है कि केवल इन्हीं कंपनियों को यह पट्टा मिलना चाहिए था, क्योंकि यही उसके लायक थीं.) के साथ ही कई बड़ी निजी कंपनियों जैसे आर्सेलर मित्तल, टाटा स्टील और उषा मार्टिन को ये पट्टे नहीं दिए गए. यहां तक कि इन कंपनियों को तो सुनवाई का मौका भी नहीं दिया गया. इन कंपनियों ने सरकार से गुहार भी की कि आखिर सरकार ने घाटकुरी खदान को बांट कर बिना किसी वैज्ञानिक तरीके के ही खनन शुरू करने की इजाज़त कैसे दी. इसके बाद वही हुआ जो होना था या ऐसे मामलों में होता है. जिन छहों कंपनियों को यह लीज़ शुरू में दी गई थी, उनको इस इलाके में लौह-अयस्क के किसी तरह के खनन से मना कर दिया गया. हालात यहां तक पहुंच गए कि यह छहों कंपनियां मामले को लेकर सुप्रीम कोर्ट में चली गईं, जहां हाल ही में इस मामले की सुनवाई शुरू हुई है.

कोवर्ट के पास तीन फरवरी 2009 की एक चिट्ठी है, जो इस मामले की पोल खोलती है. यह पत्र राघव नंदन प्रसाद, उपाध्यक्ष (खनन) ने अतिरिक्त निदेशक (खनन) को लिखी है. इससे साफ-साफ पता चलता है कि कुछ कंपनियों को इस पूरे मामले में बिना किसी वजह के तरजीह दी गई और कुछ को निशाना बनाया गया. चिट्ठी की कुछ प्रमुख बातें हम आगे दे रहे हैं. इसमें कहा गया है कि तीन अक्तूबर 2008 को हुई बैठक में झारखंड राज्य की तरफ से जो विचार दिए गए, उसमें जाहिर तौर पर कई मसलों को दबाया गया. पत्र में ये बातें दी गई हैं-

1) एमएमडीआर एक्ट 1957 के तहत आरक्षित क्षेत्र राज्य का नीतिगत फैसला है जिसे 1969 के खनन कानून के नियम 59(2) के प्रयोग से बदला नहीं जा सकता

2) किसी और (सरकारी संकायों और निजी कंपनियों)को सुनवाई का मौका नहीं मिलना नियम 12.26 के तहत है और उसे 59(2) के द्वारा नहीं समझाया जा सकता क्योंकि 59(2) अधिक से अधिक गजट जरूरतों को आसान कर सकता है लेकिन सुनवाई की प्रक्रिया को नहीं बदल सकता.

3) ऊपर दिए गए तथ्यों को दबाने के उपायों के कारण सर्वोच्च अदालत में फैसला लेने के लिए जरूरी तकनीकी तथ्य और सामग्री नहीं मिल पाई. यही स्थिति खनन निदेशालय के स्तर पर भी है जहां एक उपनिदेशक और अतिरिक्त निदेशक के द्वारा उठाए गए एतराजों को पूरी तरह से दरकिनार कर दिया गया है और सरकार के सामने नहीं रखा गया है.

4) झारखंड राज्य ने पहले भी घाटकुरी के अलावा दूसरे इलाकों में एसएलपी आवेदकों और उनके समूह की कंपनियों को लौह अयस्क आवंटित किया है. घाटकुरी का मामला कोई विशेष मामला नहीं है.

5) चाईबासा के जिला खनन अधिकारी भी इस मामले में वादी हैं लेकिन उनके जवाब का कोई भी उल्लेख 06.12.2008 को दायर शपथपत्र में नहीं है.

6) सरकार के सामने आखिरी रास्ता यह बचा है कि वह माननीय सुप्रीम कोर्ट के सामने एक पुनर्विचार याचिका या पूरक शपथपत्र दायर करे. जिसमें गलतियों की दुहाई देते हुए 06.12.2008 के शपथपत्र पर फिर से विचार करने के लिए कहा जाए.

झारखंड में भ्रष्टाचार संक्रामक है. राष्ट्रपति शासन लोगों के लिए काफी राहत लेकर आया है. इसकी वजह बस इतनी सी है कि भ्रष्ट और दागदार नेताओं के गठजोड़ ने जनता को जी भर कर लूटा है. इससे करदाताओं में खासी नाराज़गी है गठबंधन सरकारें आती हैं और जाती हैं. चेहरे बदल जाते हैं. लोग बदल जाते हैं. पार्टी बदल जाती है. सत्ता बदल जाती है. कुछ अगर नहीं बदलता तो वह है भ्रष्टाचार.

राजनेता और नौकरशाह यह जानते हैं कि गठबंधन सरकारों के इस दौर में और राजनीतिक तौर पर अस्थिर इस प्रदेश में वह जितनी जल्द अपनी जेबें भर लेंगे, उनके लिए उतना ही मुफीद होगा. कुछ स्थानीय लोग कहते हैं कि यहां लोकशाही पूरी तरह विफल हो चुकी है. हालांकि हुआ तो इसका ठीक उल्टा है. राजनेता, नौकरशाह और उनकी जमात ने ही झारखंड में लोकशाही को विफल कर दिया है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

बुश से भी ज्यादा खतरनाक हो सकते हैं बराक ओबामा

राहुल मिश्र

विश्व समुदाय को बराक ओबामा का असली चेहरा दिखना शुरू हो गया है. ओबामा की नीतियां एक एक-कर सारी खुशफहमियों को तोड़ रही है, जो दुनिया ने उनसे लगा रखी हैं. आज यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि बराक ओबामा पूर्व राष्ट्रपति जॉर्ज बुश से भी खतरनाक राष्ट्रपति साबित होंगे. ओबामा की नीतियां बुश से कहीं ज्यादा आतंकवादियों को पूरी दुनिया में पैदा करेगीं.

इन दो तस्वीरों में बुश और ओबामा के हावभाव एक जैसे लग रहे हैं. साफ है कि दोनों का अंदाज एक है. क्या इनके सोचने का अंदाज भी एक ही है?

राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा की जीत बदलाव को मुद्दा बनाकर हुई. उन्होंने इराक-युद्ध का भरपूर विरोध किया और इसको अमेरिका की ऐतिहासिक भूल तक करार दिया. आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में बुश के तरीकों को नकारने की बात कही गई. चुनाव के नतीजों ने बदलाव तो जरूर किया. एक अश्वेत अमेरिकी, दुनिया की सबसे ताकतवर कुर्सी पर बैठा. कुर्सी संभालते ही ओबामा ने यह साफ कर दिया कि वह बुश की नीतियों को बदस्तूर जारी रखेंगे. महज नीतियों को लागू करने के तरीकों में बदलाव आएगा.

अमेरिकी राष्ट्रपति का पद भार संभालते ही ग्वांतानामो बे और सीआईए की सभी गुप्त जेलों को एक साल के भीतर बंद करने का निर्देश जारी कर बराक ओबामा ने अपने चुनावी वादों को पूरा किया. हालांकि अमेरिका में अब यह विवाद शुरू हो गया है कि ग्वांतनामो को बंद करने से कहीं देश की सुरक्षा खतरे में न पड़ जाए. ओबामा के विरोधी रिपब्लिकन और रूढ़िवादी नेता यहां तक कहने लगे हैं कि ग्वांतनामो के खतरनाक कैदियों को अमेरिका की नागरिक जेलों में भेजने से स्थानीय लोग असुरक्षित हो जाएंगे.

अपने पहले हफ्ते के कार्यकाल में बराक हुसैन ओबामा ने दुनियाभर के मुस्लिम समुदाय से कहा कि मुसलमान अमेरिका के दुश्मन नहीं है. ओबामा ने यह बयान भी जारी किया कि आतंक के खिलाफ लडाई में कथनी और करनी का बहुत महत्व है. ओबामा के मुताबिक इस युद्ध को दिल और दिमाग के स्तर पर ही जीता जा सकता है. वैसे तो इसका सीधा मतलब यह निकलता है कि दुनियाभर के मुसलमानों को, उनकी सरकारों को और उनके धर्म को विश्व समुदाय में उचित आवाज मिले और भटके हुए नौजवानों को वापस मुख्य धारा में लाने की कोशिश सार्थक ढंग से की जाए. लेकिन अमेरिकी नीति में कहा कुछ और जाता है, किया कुछ और जाता है.

अगर दिल और दिमाग के स्तर पर ओबामा को यह युद्ध लड़ना होता तो ग्वांतानामो में कैद सैकड़ों निर्दोष आज रिहा होते और वे पिछले 6 सालों से दी जा रही शारीरिक और मानसिक प्रताडना का इलाज करा रहे होते. लेकिन, ग्वांतानामो के निर्दोष कैदियों की रिहाई नहीं की जा सकती. अमेरिका को उनकी रिहाई से खतरा महसूस हो रहा है. इतने सालों तक जेल में रहकर, मौत के करीब जीने और जानवर से बदतर हालत में पहुंच चुके ये कैदी अमेरिका के खिलाफ मुसलमानों की नफरत का प्रतीक बन सकते है. अमेरिका को डर है कि ये अपने देश पहुंचते ही मसीहा का दर्जा न पा जाए और अमेरिका के खिलाफ नफरत फैलाने का काम न करें. क्योंकि आज ये बेगुनाह भले हों लेकिन अमेरिकी प्रताड़ना ने इन्हें आतंकवादी बना दिया है. अमेरिकी प्रशासन ऐसे आतंकवादियों को रिहा करने का जोखिम नहीं ले सकता. यह तो बस ग्वांतानामो में सीआईए की एक जेल से पैदा हुए आतंकियों की बात है. ऐसे कई हजार आतंकवादी इराक और अफगानिस्तान की जेलों में पैदा किए जा चुके हैं.

जो गलती अमेरिका ने ग्वांतानामो के वीडियो ज़ारी करके की थी उसे अब नहीं दोहराया जाएगा. इराक और अफगानिस्तान में सीआईए की गुप्त जेलों के वीडियो फुटेज दुनिया के सामने नहीं लाए जाएंगे. सद्दाम हुसैन की गिरफ्तारी से लेकर फांसी तक की तस्वीरों जैसी कोई और तस्वीर देखने को नहीं मिलेगी. अब सब कुछ गज़ा पर हुए इज़रायली हमले की तर्ज पर किया जाएगा. जहां हजारों महिलाओं और बच्चों की मौत हो गई और दुनियाभर के देश न कोई प्रतिक्रिया दे सके और न ही बर्बादी के उस मंजर का जिक्र करते हैं. क्योंकि आधिकारिक तौर पर गज़ा में ऐसा कुछ हुआ ही नही. इज़रायल और अमेरिका की इच्छा के मुताबिक हकीकत बदल गई और गज़ा में महज आतंकवादी मारे गए.

9-11 हमले के तुरंत बाद आतंक के खिलाफ युद्ध का ऐलान कर दिया गया. बराक ओबामा ने अपने पहले ही भाषण में ये साफ करने की कोशिश की कि अमेरिका के आतंक के खिलाफ युद्ध को मुसलमानों के खिलाफ न समझा जाए.

दुनियाभर से ओबामा ने इस भाषण पर बड़ी प्रतिक्रिया बटोरी. कुछ खुशी का इज़हार कर रही हैं तो कुछ दुनियाभर के मुसलमानों की दुखद मनोदशा का प्रदर्शन कर रही हैं. इससे यह साफ हो गया कि ओबामा को लेकर मुसलमानों में दो खेमे हैं. पहला, जिसे ओबामा से उम्मीद है कि वे उनके फायदे का काम कर रहे है और वे या तो पहले से अमेरिका के दोस्त हैं या फिर बनने को तैयार है. वहीं दूसरा खेमा वह है जिसे ओबामा के बयान से तकलीफ और

> आज अमेरिका में सरकार बदल गई है. बराक हुसैन ओबामा इस नई सरकार के मुखिया हैं, और वे अमेरिका के दुश्मनों की पहचान कर चुके हैं.

निराशा हुई है.

इन दोनों खेमों पर गौर करें तो साफ है कि मुसलमानों का पहला खेमा न कभी अमेरिका का दुश्मन रहा और न ही उसे अमेरिकी नीतियों से कभी कोई नुकसान पहुंचा. अलबत्ता, यह खेमा अपने हित के लिए अमेरिकी हित के पक्ष में हमेशा लामबंद रहा. यह खेमा दुनियाभर के मुस्लिम देशों की सियासत और अर्थ-व्यवस्था के नजदीक पहचाना जा सकते है. ज़ाहिर है यह खेमा सशक्त अल्पसंख्यकों का है जिसने कभी हारना नहीं सीखा.

इसके विपरीत, दूसरा खेमा अधिकांश मुस्लिमों का है. इसे अमेरिकी नीतियों से सीधा नुकसान हो रहा है. इनके व्यवसाय, और रोजी-रोटी पर लात पड़ रही है. अमेरिकी हमलों में इनकी मौत हो रही है. इनके बेगुनाह बीवी-बच्चों पर मिसाइलें गिर रही है. सबसे खास बात तो यह कि इन्हीं के बीच आतंकवादी पैदा हो रहे है. ये जिहाद को गले लगा रहे हैं. ऐसे लोगों को बराक हुसैन ओबामा की बयानबाजी महज भद्दा मजाक लग रहा है.

इनका तर्क है कि ओबामा चाहते हैं कि दुनियाभर के मुसलमान अमेरिका को अपना दुश्मन न माने. इसके साथ अबतक मारे गए सैकड़ों लोगों और कई सालों से चल रहे मौत और तबाही के मंजर को भूल कर अमेरिका से दोस्ती कर लें. इससे बड़ी विडंबना यह है कि ओबामा अपने बयान में सीरिया, हेजबुल्लाह, इरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान को अभी भी अमेरिका का दुश्मन बता रहे हैं. जॉर्ज बुश ने अपने कार्यकाल के दौरान पहले मुस्लिम जगत में अमेरिका के दुश्मन की पहचान की और फिर एक-एक कर उसे मौत और बर्बादी का मंजर देखने को मजबूर कर दिया. आज अमेरिका में सरकार बदल गई है. बराक हुसैन ओबामा इस नई सरकार के मुखिया हैं, और वे अमेरिका के दुश्मनों की पहचान कर चुके हैं. पूरे मुस्लिम जगत को संदेश देने के लिए ओबामा ने अल-जज़ीरा की जगह अल-अरेबिया टीवी को माध्यम चुना. यह जानते हुए भी कि बुश के दौर के अमेरिकी दुश्मनों को अल-अरेबिया पर यकीन नहीं है. इसकी वजह भी साफ है. अल अरेबिया सत्ता और अर्थव्यवस्था से तालमेल रखता है और उन मुसलमानों की बात रखता है जो कभी भी अमेरिका का दुश्मन नहीं रहे. जाहिर है, एक बार फिर ये ओबामा के शब्दों का मायाजाल है, जिसका महत्व महज उन लोगों के लिए है जो पहले खेमे के मुसलमान हैं. इसके चलते दूसरे खेमे की नाराजगी और चिंता स्वाभाविक है. भले ही इराक को लंबे समय तक दुश्मन न माना जाए, लेकिन ईरान, अफगानिस्तान और पाकिस्तान इस सरकार के लिए प्रथम पंक्ति के दुश्मन तय किए जा चुके हैं.

ओबामा की दोमुंही नीति का खुलासा ईरान को दी गई धमकी से भी सामने आया. प्रस्ताव में ईरान को सभ्य देशों की श्रेणी में रखने के लिए दी गई शर्तें किसी भी आत्मसम्मानी देश को मंजूर नहीं हो सकती. जिस तरह इराक को तबाह कर दिया गया और पूरी दुनिया ने देखा कि इराक के पास ऐसा कोई नाभिकीय अस्त्र नहीं मिला जिससे पूरी दुनिया को खतरा महसूस कराया जा रहा था. उसी तरह अब ईरान को बार-बार यह कबूल कराने की कोशिश की जा रही है कि वह अपने नाभिकीय कार्यक्रम पर अडिग है और उसे भी पूरी दुनिया के लिए खतरा साबित किया जा सकता है.

इसके साथ ही गज़ा मामले पर ओबामा की चुप्पी और इजराइली कार्रवाई को जायज ठहरा कर ओबामा ने बुश कार्यकाल के मुसलमान दुश्मनों का न दिल और न ही दिमाग जीतने की कोशिश की. अब बुश और ओबामा के कार्यकाल में दुश्मनों की संख्या को देखा जाए तो साफ जोड़ा जा सकता है कि इस ओबामा सरकार में अमेरिका के दुश्मनों में इजाफा होना शुरू हो गया है. अगर बुश की नीतियों के चलते पिछले आठ साल में दुनियाभर में आतंकवाद आठ गुना तीव्र हुआ है तो जाहिर है अधिक दुश्मनों के साथ अपने कार्यकाल में ओबामा बुश से कहीं ज्यादा आतंकी पैदा करेंगे.

rahul.chauthiduniya@gmail.com

अमेरिका से भगाए जा रहे हैं भारतीय

मराठी मानुष की तर्ज पर अमेरिकी मानुष कुछ अटपटा लगता है लेकिन मंदी से जूझ रहे अमेरिका में ठाकरेवादी नीति अपनाई जा रही है. राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा अमेरिका से भारतीयों को भगाने की कवायद शुरू कर चुके है. पिछले कुछ महीनों में हज़ारों की संख्या में भारतीय अपनी नौकरी गंवा चुके हैं. आज उनके सामने भारत वापस लौटने के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं है.

बराक ओबामा ने मंदी से जूझ रही अमेरिकी कंपनियों की मदद के लिए 787 बिलियन डॉलर की राहत देने का बिल कांग्रेस से पास कराया. जिसके तहत केवल उन्हीं अमेरिकी कंपनियों को राहत दी जाएगी जो अमेरिकी नागरिकों को नौकरी देने की शर्त मानते हैं. घाटा झेल रही कंपनियों को सरकारी मदद पाने के लिए एच-1बी वीसा पर किसी विदेशी को नौकरी देने पर पाबंदी लगानी होगी. उन्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि उनकी कंपनी में कोई नौकरी एक अमेरिकी नागरिक की कीमत पर विदेशी नागरिक को तो नहीं दी गई है. बराक ओबामा सरकार के इस फैसले से गरीबी और बदहाली की ज़िंदगी जी रहे अमेरिकियों की उम्मीद बंधी है. यह फैसला घाटा झेल रही अमेरिकी कंपनियों को ज्यादा फायदे का सौदा नहीं लग रहा. कम कीमत पर मिलने वाला प्रशिक्षित वर्कफोर्स अमेरिका के मूल नागरिकों में नहीं है. वहां के युवाओं को प्रशिक्षित करना इतना आसान काम भी नहीं है. बावजूद इसके उनकी मजबूरी है कि मंदी की मार से बचने के लिए वे सरकार की इस शर्त को भी मानने को तैयार हैं क्योंकि इसके सिवा उनके पास कोई चारा नहीं है.

ओबामा के इस कदम से अमेरिका में काम कर रहे सैकड़ों भारतीयों के सामने समस्या खड़ी हो गई है. उन्हें किसी भी वक्त नौकरी से हाथ धोने का डर लगा हुआ है. रोज़ सुबह ऑफिस पहुंचने पर सबसे पहली चर्चा इसी बात की होती है कि किसे पिंक स्लिप दी गई. पिंक स्लिप, दरअसल नौकरी से निकालने का सबसे आसान तरीका है.

जिस भी कर्मचारी को बाहर का रास्ता दिखाना होता है उसे सुबह ऑफिस पहुंचते ही एक बंद लिफाफा ऑफिस के रिसेप्शन पर ही थमा दिया जाता है. इस लिफाफे के अंदर गुलाबी रंग की एक पर्ची होती है जिसमें साफ तौर पर लिखा होता है कि कंपनी को अब आपकी सेवाओं की ज़रूरत नहीं है.

रिसेशन की चपेट में आने के बाद से अब तक नौकरी गंवा चुके भारतीयों का कोई आधिकारिक आंकडा नहीं है. अमेरिकी प्रेस में बेरोज़गार हो रहे विदेशियों का कवरेज नहीं हो रहा है. जो लोग नौकरी गंवाने के बाद अभी भी अमेरिका में है और अपनी बचत के सहारे वहां रहकर वहीं दूसरी नौकरी तलाश रहे हैं, वह फिलहाल कुछ भी बोलने से

> रिसेशन की चपेट में आने के बाद से अब तक नौकरी गंवा चुके भारतीयों का कोई आधिकारिक आंकडा नहीं है. अमेरिकी प्रेस में बेरोज़गार हो रहे विदेशियों का कवरेज नहीं हो रहा है.

कतरा रहे हैं. अधिकांश खबरें अमेरिका छोड़कर भारत वापस आ रहे लोगों से मिल रही है कि किन हालातों में उन्हें अपनी नौकरी से हांथ धोना पडा. जिन लोगों से हमारी बात हुई वो अपनी कहानी सुनाते सुनाते भावुक हो उठे. उनका मानना है कि उन्होंने अपनी जिन्दगी का सबसे बेहतरीन वक्त अमेरिका को दिया. चार-पांच साल तक मेहनत कर कंपनी के साथ साथ अमेरिकी सरकार को हर टैक्स का भी बराबर भुगतान किया. लेकिन जिस सुबह उन्हें पिंक स्लिप थमाई गई तो उनके पैरों तले ज़मीन खिसक गई. उन्हें आज भी ये बात हज़म नहीं हो रही कि वो कैसे रातों-रात एक मेहनती और बढ़िया कर्मचारी से बेकार और नाकाबिल हो गए.

अमेरिका में विदेशियों को नौकरी देने के लिए एच-1बी वीसा का प्रावधान है जिसके तहत विदेशी नागरिक अमेरिका में 4-5 साल तक काम कर सकते है. दो साल पहले तक अमेरिका 1 लाख से ज्यादा एच-1बी वीज़ा जारी करता था. इस वीज़ा के तहत अधिकतर भारतीय नागरिक अमेरिका में सुनहरे भविष्य की तलाश में जाते थे. पिछले साल ही बुश प्रशासन ने अमेरिका में बढ़ती बेरोज़गारी को देखते हुए एच-1बी वीज़ा की संख्या घटाकर महज़ 65,000 कर दी थी. इस फैसले का सबसे ज्यादा नुकसान भारत के आईटी प्रोफेशनल्स को हुआ था.

1990 से लेकर 2007 तक अमेरिका ने दुनियाभर से लोगों को बुला कर अपनी कंपनियों को फायदा पहुंचाया. इन सत्रह सालों में अमेरिकी वर्कफोर्स में विदेशी कर्मचारियों का प्रतिशत 9.3 से बढकर 15.7 तक पहुंच गया. कई कंपनियों की उपलब्धि की सुनहरी गाथा विदेशी और खास तौर पर भारतीय आईटी कर्मियों की कहानियों से भरी है. सस्ते दामों पर भारत से प्रतिभा का पलायन कराकर अमेरिकी कंपनियों ने जमकर मुनाफ़ा कमाया.

आज अमेरिका में बेरोज़गारी चरम पर है. मंदी अमेरिकी कंपनियों को अपनी गिरफ़्त में ले चुकी है. सरकार पर बेरोज़गारी की मार झेल रहे अमेरिकी नागरिकों का दबाव है. हाल में हुए चुनाव में बेरोज़गारी एक अहम मुद्दा रहा. बराक ओबामा ने चुनावी भाषणों में बुश की नीतियों को बढ़ती बेरोज़गारी का जिम्मेदार बताया था.

सत्ता की कमान संभालते ही बराक ओबामा पर सबसे पहले देश को मंदी से उबारने और आर्थिक मजबूती देने का दारोमदार है. इसके चलते उन्होंने बीमार कंपनियों को नुकसान से उबारने के लिए लंबी- चौड़ी रकम का प्रावधान एक कानून बना कर किया. बराक ओबामा के बनाए कानून और अमेरिका में रिसेशन से बचने के प्रयासों से यह साफ है कि वहां से भारतीयों को भगाने की सोची समझी साजिश चल रही है. सरकार की यह नीति अमेरिकी नागरिकों के असंतोष को मद्देनज़र रखते हुए बनाई गई है. इसका मकसद अमेरिका से विदेशी नागरिकों को भगाने का है. उसकी प्रतिभा पलायन की पुरानी नीति मंदी की आग में घी का काम कर रही है. पिछले कुछ सालों में वर्चस्व की लड़ाई लड़ने में अमेरिका ने अमेरिकी करदाताओं के खरबों रुपए बहा दिए. जिसकी मार अब अर्थव्यवस्था पर पड़ रही है. नतीज़तन, अमेरिकी नागरिकों के लिए ही उनकी कंपनियों में जगह नहीं रही. लाखों की संख्या में अमेरिकी नागरिक बेरोज़गार होते रहे. बेरोगारी के नाम पर अब ओबामा भारतीयों को ही बेदखल कर रहे हैं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

दुनिया

पाकिस्तानी मीडिया अधिक स्वतंत्र और निर्भीक है

व्यालोक

भारत में मीडिया जिस तरह से काम कर रहा है, उस पर तो मीडिया में काम करने वालों ने भी सवाल उठाए हैं. सरकारी विज्ञापनों और सनसनीखेज कहानियों, जिसमें सूचना तो हो सकती है, पर खबरों का तत्व नहीं रहता, के दम पर चल रहे अखबारों और चैनलों से बेहतर हालात की उम्मीद भी नहीं की जा सकती. पिछले कुछ दिनों से भारत-पाक संबंध, आतंकवाद और तालिबान के नाम पर जो मीडिया, खासकर खबरिया चैनल परोस रहें हैं, उन्हें खबर तो बिलकुल नहीं कहा जा सकता. भारतीय मीडिया के हालात पर गौर करें तो जिस तरह 26 नवंबर को मुंबई पर हुए आतंकी हमलों के बाद भारतीय मीडिया ने युद्ध का उन्माद या युद्ध सरीखे हालात पैदा करने की कोशिश की, उससे मीडिया की निष्पक्षता और ऑब्जेक्टिविटी पर ही सवालिया निशान लग जाता है. पूरे मीडिया जगत में इस तरह का माहौल बन गया, मानो हरेक पाकिस्तानी आतंकी है और पूरा पाकिस्तान भारत के खिलाफ साजिश में लगा है. पाकिस्तान में ऐसे तत्व हो सकते हैं, इससे इंकार नहीं, लेकिन पाक नागरिक समाज और मीडिया भी उनसे उतना ही पीड़ित है. हमारे मीडिया को अपने पाकिस्तानी साथियों से कुछ सीखने की जरूरत है.

आज दक्षिण एशियाई देशों में जो हालात हैं उन पर दुनिया भर की नजरें टिकी हैं. आतंक, राजनैतिक उठापठक और हिंसा की जो स्थिति बन गई है उसका असर इस क्षेत्र पर ही नहीं बल्कि पूरी विश्व-व्यवस्था पर पड़ेगा. ऐसे में इन देशों की मीडिया की जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है. मीडिया क्या दिखा-बता रही है इसका असर और गहरा हो जाता है. साथ ही मीडिया के काम की गहरी पड़ताल की भी जरूरत पड़ती है.

जिस तरह की स्थिति पाकिस्तान में है उसमें पाकिस्तानी मीडिया की जिम्मेदारी बहुत महत्वपूर्ण है. आतंक और राजनैतिक खींचतान के इस माहौल में पाकिस्तानी राष्ट्र की बुनियाद पर ही सवालिया निशान खड़े हो गए हैं. इस हिंसा के छींटें पाकिस्तानी मीडिया के दामन पर भी पड़े हैं. 19 फरवरी 2009 को मूसा खानखेल मारे गए. स्वात में एक रैली कवर करने गए जिओ टीवी रिपोर्टर मूसा को अपने फर्ज की ख़ातिर जान गंवानी पड़ी. फर्ज एक पत्रकार का, एक खबरनवीस का था. यह दुनिया तक खबर पहुंचाने का फ़र्ज था. मूसा का यह फ़र्ज उस दिन कट्टरपंथी हिंसा का शिकार हुआ. मूसा की मौत के अगले दिन पाकिस्तान की पूरी मीडिया का एकजुट बयान आया, मीडिया ने साफ कहा कि बंदूक का जवाब कलम से दिया जाएगा. मूसा ऐसे पहले पत्रकार नहीं थे जिनको पत्रकार होने और अपने फर्ज को अंजाम देने की कीमत चुकानी पड़ी हो, दरअसल पाकिस्तान में मीडिया हमेशा से निशाने पर रही है.

संयुक्त राष्ट्र की वेबसाइट के मुताबिक, पाकिस्तान दुनिया भर में पत्रकारों के लिए सबसे ख़तरनाक ज़गहों में से एक है. आतंकवाद और कट्टरवाद ने तो पत्रकारों को निशाना बनाया ही है सरकारी तंत्र भी कम गुनहगार नहीं है. पाकिस्तान में पत्रकारों के ख़िलाफ सबसे ज्यादा हिंसा स्वात और फाटा जैसे दूरदराज के इलाकों में ही नहीं राजधानी इस्लामाबाद में हुई है.

पाकिस्तान में औसतन हर 26वें दिन एक पत्रकार मारा जाता है. हर दिन एक गिरफ्तार होता है और एक का अपहरण होता है. हर तीसरे दिन एक पत्रकार पर हमला होता है, हर पांचवे दिन मीडिया को चुप रहने का सरकारी फरमान जारी होता है.पत्रकारों को धमकी मिलती है या उनको अगवा किया जाता है. पाकिस्तान के पत्रकार ऐसे हालात के बीच पत्रकारिता कर रहे हैं.

पाकिस्तान में मीडिया ने हमेशा से इस तरह के हालात में काम किया है. ज़िया-उल-हक से ज़रदारी तक मीडिया ने सरकार के गलत फैसलों के ख़िलाफ माहौल बनाने में मदद की है. पाकिस्तान में चल रहे मौजूदा संकट के दौरान भी मीडिया ज़रदारी के फैसलों के ख़िलाफ बोलती रही. ज़रदारी भूले नहीं होगें कि इसी मीडिया ने उन्हें मिस्टर टेन परसेंट का नाम दिया था.

मुशर्रफ ने सत्ता संभाली तो उनके उदार रवैये और अमेरिका से दोस्ती पर मीडिया उनकी समर्थक रही लेकिन जब वह कानून को धता बताकर राष्ट्रपति की कुर्सी पर जमे रहे तो यही मीडिया उनके खिलाफ चल रहे आंदोलन की पैरोक्कार बन गई. मुशर्रफ की लगाई इमरजेंसी के दौरान बड़े पाकिस्तानी चैनलों को बंद करा दिया गया. उस दौरान जिओ और एआरवाई जैसे बड़े पाकिस्तानी चैनल दुबई से प्रसारण करते रहे. हमारे यहां के ख़बरिया चैनल भले ही यह दावा करते रहें कि ख़बर किसी कीमत पर देंगे, लेकिन इसकी सच्चाई तो पाक में ही दिखती है. पाकिस्तान में ख़बरों का व्यापार खूनी खेल ले रहा है. पत्रकारों की जान पर आ बनी है, और यहीं उनकी सही परीक्षा हो रही है. पाकिस्तान के मीडियाकर्मी जिस तरह से अपना कर्तव्य निबाह रहे हैं, वह निश्चय ही काबिल-ए-तारीफ है.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

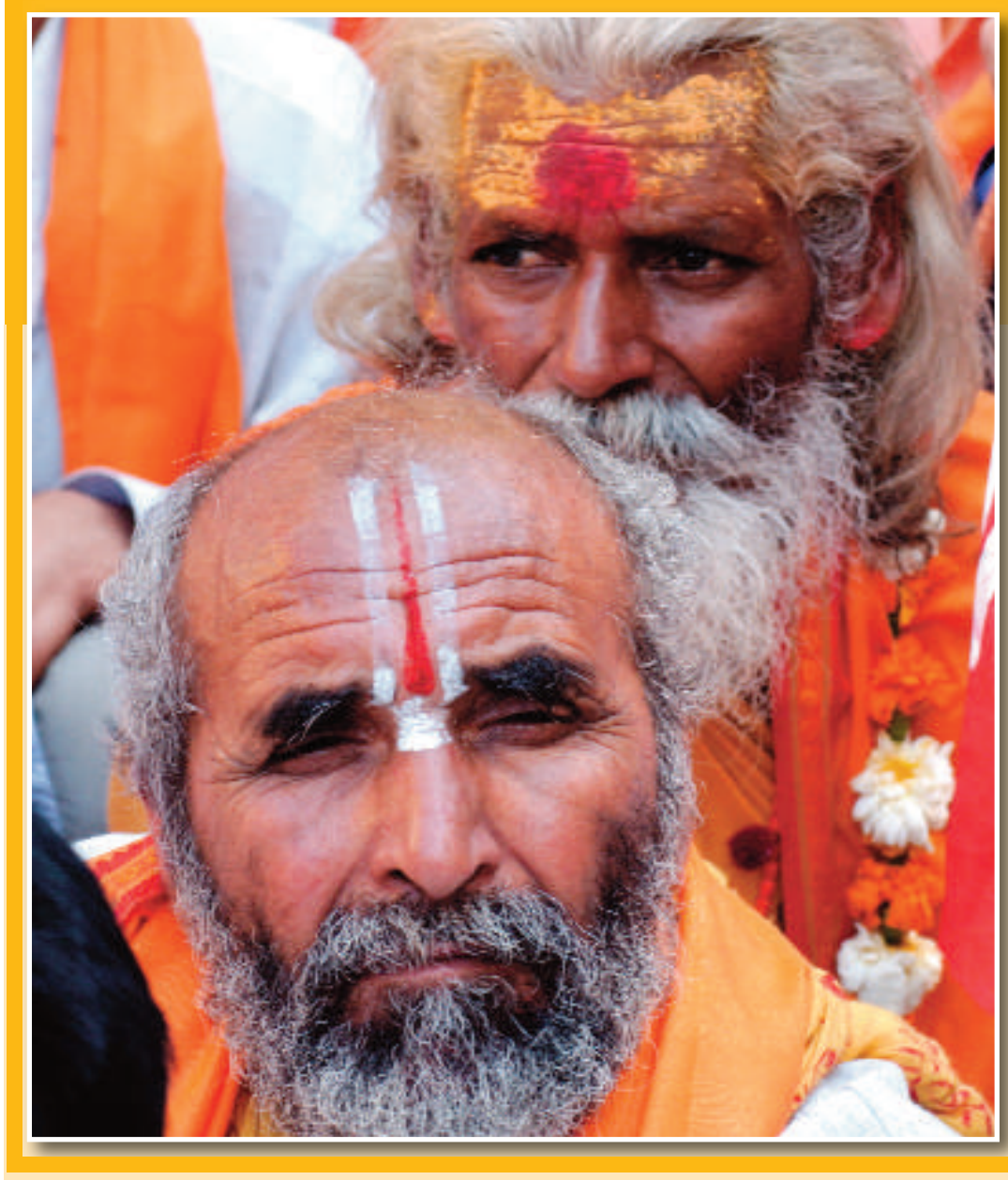

हिंदू होने का धर्म

हमने आप पाठकों से विशेषांक में कहा था कि हिंदू शब्द के साथ जितनी भी ग़लतफहमियां हैं, हम उन्हें ही एक-एक कर दूर करने की कोशिश करेंगे. हम अपनी बात वहीं से शुरू करेंगे, जहां पिछली बार खत्म की थी. दरअसल हिंदू शब्द को धर्म के तौर पर इस्तेमाल करना ही ग़लत है. सबसे बड़ी बात तो यह कि हिंदू कोई धर्म ही नहीं है. धर्म अगर कोई है, तो सनातन है और वह भी अंग्रेजी शब्द रिलीजन के अर्थ में नहीं. हिंदू शब्द ही भाषा के बदलाव से बना है, पारसी लोगों की भाषा में ह को स कहते थे, तो सिंधु बन गया हिंदु और सिंधु के दूसरी ओर रहनेवाले कहलाए हिंदू. सच कहा जाए तो किसी भी पौराणिक या धार्मिक किताब (जो सनातन धर्म से संबंधित है) में हिंदू शब्द का तो उल्लेख तक नहीं है. कायदे की बात करें, तो सनातन धर्म जीवन को बिताने का रास्ता है. यह वह नियम है, जिससे हमारी सारी क्रियाएं निर्धारित होती हैं. लोकप्रिय मान्यता के उलट हिंदू होना एक मान्यता है, एक विचार है, एक जीवनपद्धति है, न कि किसी किताब या मसीहा से निर्देशित होने वाली विचारधारा.

सनातन धर्म के बारे में सबसे बड़ा मिथक यह है कि यह भी किसी संगठित धर्म की तरह ही एक किताब या मसीहा पर आधारित है. सच्चाई इसके ठीक उलट है. हिंदू (सनातन) धर्म ही वैयक्तिकता या इंडिविजुएल्टी को बढ़ावा देता है, यह धर्म को संगठन बनाने के ठीक उल्टा है. मुख्य परेशानी तो सनातन धर्म के साथ यही है कि हम इसको भी आज के दौर में उपलब्ध पैमानों और परिभाषाओं पर ही आंकने लगते हैं. सनातन धर्म किसी एक व्यक्ति की बपौती नहीं है, उसी तरह यह किसी बाइबिल, कुरान या जेंद अवेस्ता से भी निर्देशित नहीं होती. किसी विवाद की दशा में कोई एक ऐसी किताब या मसीहा नहीं, जिसकी बात को अंतिम सत्य मान लिया जाए. परिणाम यह है कि इसे माननेवालों पर इसकी कोई बंदिश नहीं कि किसी एक विचार को ही अंतिम मान लें. इस तरह सनातन धर्म सांस्कृतिक अधिक है, न कि सामुदायिक या सांप्रदायिक. यह लगातार गतिशील और प्रगतिशील है. सनातन धर्म अपने माननेवालों और युगीन प्रासंगिकता के हिसाब से लगातार बदलता रहता है. इसका न तो प्रादुर्भाव हुआ, न ही इसका अंत होगा. यह अनादि और अनंत है. धर्म का मतलब है, जो कुछ भी हम धारण करते हैं-धारयति इति धर्मः- यानी हम अगर विद्यार्थी हैं, तो पढ़ना हमारा धर्म, हम अगर कारीगर हैं, तो काम करना हमारा धर्म और अगर हम लेखक हैं, तो लिखना हमारा धर्म. उसी तरह वैदिक काल से ही सनातन धर्म में कर्म के आधार पर ही तमाम धर्म बने. कहा जाए तो आज जिन अर्थों में हम जातियों या वर्ण को लेते हैं, उसी आधार पर ही सनातन धर्म भी बना. बाद में यह कर्म या जातियां रूढ़ हो गईं. यह खैर एक दूसरी ही कहानी है, जिस पर चर्चा बाद में.

हिंदू धर्म को बहुदेववादी मानने के पीछे भी यही ग़लतफहमी है. कई मानते हैं कि सनातन धर्म में इतने देवी-देवताओं का होना बहुदेववाद का परिचय देता है, यह कुछ उसी तरह का मसला है, जैसे लकड़ी को पेड़ समझ लिया जाए.

सनातन धर्म में आस्तिकों, नास्तिकों और अराजकों- सभी के लिए जगह होने का मूल आधार दरअसल एक ही है. वह सत्य पूर्ण है. यहां सत्य (ईश्वर, ब्राह्मण इत्यादि) को फिर से धार्मिक नहीं, सांस्कृतिक संदर्भ में लेने की जरूरत है. एकंसत, विप्राः बहुधा वदंति का मतलब यही है. सत्य एक ही है, उसकी व्याख्या के रास्ते सैकड़ों हो सकते हैं.

सनातन धर्म जीवन को बिताने का रास्ता है. यह वह नियम है, जिससे हमारी सारी क्रियाएं निर्धारित होती हैं. लोकप्रिय मान्यता के उलट हिंदू होना एक मान्यता है, एक विचार है, एक जीवनपद्धति है, न कि किसी किताब या मसीहा से निर्देशित होने वाली विचारधारा.

दरअसल सनातन धर्म में वैयक्तिकता को इतनी प्रमुखता दी गई है कि हरेक व्यक्ति को ही अपने आधार पर धर्म की व्याख्या और विवेचना करने का अधिकार है.

इसी वजह से अगर हिंदुओं के (या कहें तो सनातनियों के) 36 करोड़ देवी-देवता हैं, तो अचरज की बात नहीं. यह दरअसल सनातन धर्म के आध्यात्मिक सामंजस्य को ही दिखाता है. शास्त्रों के मुताबिक अधिकार (आध्यात्मिक योग्यता का) और इष्ट देवता (चुने हुए देव की उपासना की योग्यता) का सिद्धांत यही सिद्ध करता है. इसमें हरेक व्यक्ति को उसके हिसाब से ही अपनी पूजा पद्धति और देवता को चुनने का अधिकार है.

यहां गौर करने वाली बात यह है कि सनातन धर्म में यह काफी साफ कर दिया गया है कि अपरिवर्तनीय सत्य हरेक वस्तु या सिद्धांत में मौजूद है, भले ही दबे-छिपे ढंग में ही सही.

दरअसल सनातन धर्म की ही यह खूबी है कि इसमें अगर आचरण को लेकर कोई आंदोलन खड़ा हुआ, तो उसके साथ ही एक प्रति-आंदोलन भी ठीक उसी समय हो गया. इसी वजह से सनातन धर्म में कई संप्रदाय एक साथ हमें देखने को मिल सकते हैं. यही वजह है कि उत्तर-वैदिक काल में अगर एक साथ छह दार्शनिक स्कूल- सांख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा इत्यादि एक साथ खड़े हुए, तो बाद में पुनर्जागरण के समय सनातन धर्म के प्रतिकूल ही कई संप्रदाय जैसे, आर्य समाज, ब्रह्म समाज आदि बने. यहां भी सीधे तौर पर चुनाव की स्वतंत्रता का ही मसला है.

आज के दौर में जिस तरह सनातन (हिंदू) धर्म के स्वयंभू रक्षक-जो सही मायनों में भक्षक हैं-और मसीहा पैदा हो रहे है. जिस तरह महिलाओं, युवाओं और किसी भी तरह के वैचारिक प्रतिद्वंद्वी पर हमले हो रहे हैं, यह बताना बहुत ज़रूरी हो जाता है कि सनातन धर्म ही विचार की और चुनाव की स्वतंत्रता देता है.

क्या यह बात किसी हिंदू हृदय सम्राट को याद आएगी. क्या हमें यह बताने की आवश्यकता नहीं कि धर्म का मतलब हमारा व्यक्तिगत आचरण है और उसे निर्देशित करने का अधिकार किसी भी व्यक्ति, संस्था या समूह को नहीं.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

साहित्य को शर्मसार करते दो बुजुर्ग

अनंत विजय

राजेन्द्र यादव और मन्नू भंडारी. हिंदी के दो शीर्षस्थ कथाकार. दोनों की प्रतिष्ठा इतनी कि पाठक तो क्या लेखक भी नतमस्तक. लेकिन पिछले लगभग एक दशक से दोनों ने कुछ भी उल्लेखनीय नहीं लिखा है. राजेन्द्र यादव ने हंस के संपादकीय के बहाने समकालीन समय में जरूर सार्थक हस्तक्षेप किया है, लेकिन साथ ही यह स्वीकार भी किया है कि इधर शब्द संकट बहुत बढ़ गया है – जो लिख रहा हूं उसे लेकर दुहराव की कचोट अलग बनी रहती है. अब तो मुझे दो तीन ड्राफ्ट करने पड़ते हैं, उन्हें संशोधित करना पड़ता है. इधर एक बैठक में चार या पांच सौ से ज्यादा शब्द नहीं लिख पाता– वह भी सुबह पांच बजे के एकांत में (हंस के फरवरी अंक का संपादकीय).

वर्षों बाद मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा लिखी, लेकिन उस आत्मकथा में भी साहस और ईमानदारी का अभाव आलोचकों को दिखा. मन्नू जी अपनी आत्मकथा में भी राजेन्द्र यादव से ऑबसेस्ड दिखीं. मेरे ऐसा कहने का मतलब दोनों के साहित्यिक लेखन पर प्रश्नचिन्ह लगाना नहीं है और न ही इनकी महानता पर सवाल खड़ा करना.

लेकिन हाल के दिनों में इन दोनों बुजुर्ग लेखकों ने अपनी शादी को लेकर जो कुछ भी कहा या लिखा है, उससे मन में यह सवाल उठने लगा है कि क्या हिंदी के इन दो प्रतिष्ठित लेखकों के पास लिखने को अब कुछ नहीं रह गया है. हिंदी पत्रिका कथादेश के मार्च अंक में मन्नू भंडारी ने एक लंबा लेख लिखा है. उसमें कहा है कि सच को स्वीकार करने का साहस हो, तभी साक्षात्कार दें.

इस पूरे लेख में मन्नू जी ने यह साबित करने की कोशिश की है कि कथादेश के जनवरी अंक में राजेन्द्र यादव ने जो साक्षात्कार दिया, उसमें दोनों की शादी को लेकर यादव जी ने गलत कहा और अब मन्नू भंडारी उसे ठीक कर रही हैं. एक आम हिंदी पाठक को इस बात से क्या लेना-देना कि दोनों की शादी किन परिस्थितियों में हुई, क्यों हुई, किसने पहल की आदि-आदि. मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव से सच कहने की अपेक्षा करती हैं लेकिन मन्नू भंडारी में भी तो ये साहस नहीं है कि वह यह बता सकें कि मीता का असली नाम क्या था. इन दोनों के संबंधों में मीता तो वैसी ही हो गई है जैसी कि हिंदी साहित्य में स्नोवा वार्नो, जिसके बारे में सुना तो खूब जा रहा है लेकिन देखा किसी ने भी नहीं. साथ ही मन्नू ने किन परिस्थितियों में और किसकी वजह से राजेन्द्र यादव को घर से निकाला, यह बताने का साहस मन्नू भंडारी आजतक क्यों नहीं कर पाईं. बेहद चतुराई से इस बात का उन्होंने अपनी आत्मकथा में उल्लेख नहीं किया और बच कर निकल गईं. तो अगर खुद सच कहने और लिखने का साहस न हो तो दूसरों से यह अपेक्षा करना भी बेमानी है.

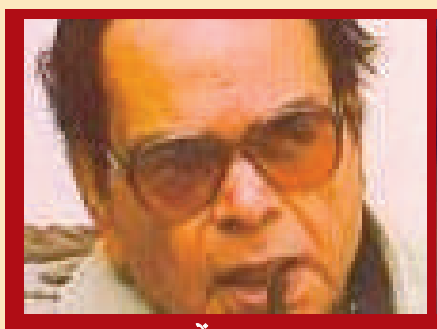

राजेंद्र यादव

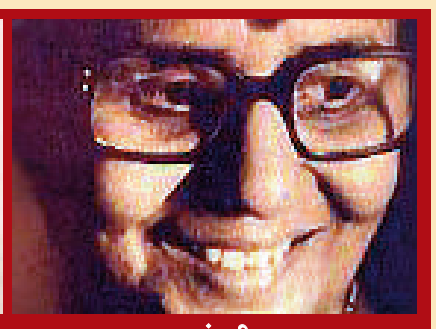

मन्नू भंडारी

रही बात राजेन्द्र यादव की, तो वह तो पिछले दो दशकों से विवादों को जान-बूझ कर न्योता देते आ रहे हैं. हालांकि पहले राजेन्द्र यादव की रुचि साहित्यिक विवाद में हुआ करती थी, जो हाल के दिनों में व्यक्तिगत विवादों तक पहुंच गई है. प्रचार पाने के लिए इस तरह से अपने संबंधों को सार्वजनिक बहस का मुद्दा बना देना हिंदी के पाठकों के साथ छल है. लेकिन जिस तरह से हाल के दिनों में गंभीर छवि वाली मन्नू भंडारी विवाद-वीर हो गई हैं, वाकई वह चौंकानेवाला है. आज हिंदी का पाठक यह जानना चाहता है कि राजेन्द्र यादव या मन्नू भंडारी ने नया क्या लिखा है. यह जानने में उसकी कोई रुचि नहीं है कि दोनों की शादी में क्या हुआ था. दोनों के व्यक्तिगत झगड़ों को छापने के लिए संपादक भी कम जिम्मेदार नहीं है. एक संपादक में इतना साहस तो होना ही चाहिए कि वह यह कह सके कि राजेन्द्र जी या मन्नू जी के व्यक्तिगत झगड़े को हम अपनी अपनी पत्रिका में जगह नहीं दे सकते. लेकिन कथा देश संपादक से यह अपेक्षा बेमानी है. इन व्यक्तिगत विवाद-वीर बुजुर्ग लेखकों की वजह से आज हिंदी साहित्य शर्मसार है. शर्मसार हम भी हैं क्योंकि ये हमारे सबसे प्रतिष्ठित लेखकों में से एक हैं. गुज़ारिश यही है कि बंद करो अपने आपसी झगड़े और विशाल हिंदी पाठक समुदाय के बीच जो आपकी छवि और प्रतिष्ठा है, उसको मटियामेट न करें.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

वी पी सिंह

अखबार वाला

तो सुनो एक दिन की
बात
शाम को
चौराहे पर
एम.एल.ए. गोली से
मारा गया
लड़का बार बार चिल्ला
रहा था
उसके हाथ पर
अखबारों की तहें थीं

बाज़ार में
पांच पैसे में
मैंने अपने दोस्त की
मौत का खबर
खरीदी
और लोगों ने भी
खरीदी

यह है अखबार-
काल का व्यापार
पर आज वह लड़का
आराम से रोटी खाएगा
यह है वह
जो कल सुबह
अखबार में नहीं आएगा

कालिख

अग्निकोख से जन्मा मैं
चिमनी का धुआं नहीं
श्रम का
तप्त इतिहास हूं
आकाश पर अंकित
धरती की गहरी
लिखावट हूं
आज सिमटा हुआ
कल
आच्छादित
मैं श्रम की
विजयी धूम्र-ध्वजा हूं-
भविष्य का हस्ताक्षर हूं

भूखे पेटों में
मैं ही पलता हूं
अश्रु नहीं
अंगार बन निकलता हूं
ढह जाते हैं सब मान
जब काल-ध्वजा
फहराती है
मैं कालिख नहीं
काल-लिख हूं
सफेदपोशों की दहशत में
हूं

मुसलमान

आबिद सुरती

जैसा यह नाम है, वैसा चौंका देने वाला यह उपन्यास भी है. वास्तव में यह उपन्यास नहीं, बंबई के बदनाम इलाके डोंगरी के दो युवकों की जीती-जागती तस्वीर है. ये दोनों मिल कर पाठकों को मुसलमान समाज के उन अंधेरों की तह तक ले जाते है,जहां सूरज की किरणें नहीं पहुंचतीं, जहां जीने केलिए पालने से संघर्ष शुरू करना होता है, जहां कदम-कदम पर चुनौतियां इंतजार करती बैठी होती हैं. यह वही मुहल्ला है, जहां कार्टूनिस्ट, कथाकार *आबिद सुरती* की परवरिश हुई. तब वहां करीम लाला डॉन था, हाजी मस्तान उभर रहा था और दाउद इब्राहिम की उमर गुल्ली-डंडा खेलने की थी. अपनी ज़िंदगी की शुरुआत के तीस सालों में आबिद ने जो देखा, जो अनुभव किया, पेश है उसी का सिलसिलेवार लेखा-जोखा...

बंबई शहर की बदनाम बस्ती डोंगरी की बदनाम गलियों में दो बच्चे पल कर बड़े होते है. दोनों की परिस्थितियां समान है. संयोग समान है, फिर भी एक को उजाले आकर्षित करते है, तो दूसरा अंधेरी दुनिया का अदृश्य मानव बन जाता है.

एक का नाम है : आबिद सुरती, दूसरे का : इकबाल रूपाणी सूफी. डोंगरी की उस समय की प्रतिष्ठित शाला हबीब हाई स्कूल में दोनों ने शिक्षा हासिल की है. पद्मश्री शेष्ठ हसन जैसे समर्पित शिक्षक के दोनों प्रिय शिष्य थे. पढ़-आगे बढ़ने की लगन दोनों में थी.

समानताएं यहीं पूरी नहीं होतीं. दोनों जवान होते हैं. दोनों की शादी में दिल-चस्पी नहीं है. वे जानते हैं कि संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने वाले युवक शादी की ज़िम्मेदारियां ईमानदारी से नहीं निभा सकते. फिर भी विपरीत परिस्थितियों में उन दोनों को शादी करनी पड़ती है. दोनों की पत्नियों के नाम भी एक है. कुल भी एक है.

एक ही मुहल्ले में रहते हुए हम एक-दूसरे से कभी मिले हों, ऐसा मुझे याद नहीं. मार्च 18 में अचानक हमारी मुलाकात हुई. मैंने उसकी तरफ़ ग़ौर से देखा. देखने में मुझे वह एकदम साधारण लगा, भीड़ में खड़ा हो तो भीड़ का एक हिस्सा दिखाई पड़े, ऐसा.

घुंघराले बाल, कांच की गोलियों जैसी आंखें पर चांदी की कमानी वाला चश्मा, सफ़ाई से तराशी हुई मूछें और होंठों पर हल्की-मुस्कान, कपड़े उजले, सफ़ेद शर्ट- और चमकते हुए जूते.

पहली नज़र में वह मुझे किसी कार्यालय में काम करने वाला बाबू लगा. पर उसकी आंखें कुछ और ही कहती थीं. वे बहुत कुछ कहती थी. मैंने उससे दुबारा मिलने की इच्छा व्यक्त की. उसने मुझे अपने घर बुलाया और हमारी मुलाकातों का सिलसिला शुरू हो गया.

संक्षेप में, मुहल्ला एक, स्कूल एक, मस्जिद एक होने के बावजूद सालों तक हम अजनबी बने रहे. इसे आप क्या कहेंगे. विधि या कुछ और? अपनी खुली छत पर आरामकुर्सी पर बैठे-बैठे अपना चेहरा आसमान को उठा कर सूफ़ी ने तो यही कहा था-

आबिद भाई, कुराने मजीद में खुदा ने स्पष्ट कहा है: उसकी मर्जी के बिना पेड़ का पत्ता भी नहीं हिलता. उसने हर इंसान के लिए एक राह मुक़र्रर की है. किसी की राह में उसने गुलाब की चादरें बिछाई है, तो किसी की राह में कांटे बोये हैं. इंसान अपना निर्धारित मार्ग छोड़ कर नई राह बनाने के लिए चाहे जितना हाथ-पैर मारे, उसे उसी मार्ग पर चलना होगा, जो उसके भाग्य के साथ जुड़ा हुआ है.

रविवार के संवाददाता द्वारा लिए गए मस्तान के साक्षात्कार में सूफ़ी के विचारों की अनुगूंज है- अल्लाह जिसको बढ़ाना चाहे, बढ़ा देगा, जिसको घटाना चाहे, घटा देगा, जिसको ज़लील करना चाहे, ज़लील कर देगा, जिसको ऊंचाइयों तक ले जाना चाहे, ले जाएगा. (1986)

सूफ़ी की जिंदगी में झांकने के पहले उसके घर, उसके परिवार और उसके मुहल्ले में झांक लिया जाए. अलबत्ता, यह मुहल्ला मेरा भी था. आज हम दोनों बंबई के श्रेष्ठ कहे जाने वाले उपनगर बांद्रा में रहते है. उन दिनों हम भिंडी बाज़ार के नज़दीक डोंगरी चारनल के इलाके में रहते थे.

सूफ़ी के जन्म के पहले ही डोंगरी में तस्करी और अपराध का ज़हर प्रवेश कर चुका था. गली-गली में शराब के अड्डे खुल गए थे. साथ में चरस और गांजे का व्यसन भी फैल रहा था.

यह वही इलाका था, जहां से आज़ादी के पहले ष्ठि लाफ़त आंदोलन शुरू हुआ था. मौलाना मोहम्मद अली और मौलाना शौक़त अली के साथ कई अन्य कांग्रेसी नेताओं ने यही से आंदोलन की बागडोर संभाली थी. आज भी डोंगरी के बुजुर्ग, साक्षी के रूप में खड़े इब्राहिम, सुल्तान, शरीफ तथा कल्याण मेंशन- इन चार मकानों को ष्ठि लाफ़त मंज़िल के नाम से पहचानते हैं. मुसलमानों के इस आंदोलन को गांधी जी का समर्थन था.

इन चार मकानों के पीछे के सरबाग नामक प्रसिद्ध सभाग्रह है. जिन्ना, पटेल, नेहरू तथा अन्य कितने ही धुरंधर नेताओं ने इसके मंच से समय-समय पर एकता का संदेश दिया था. डोंगरी उस समय स्वतंत्रता आंदोलन का भी केंद्र था.

वही पवित्र स्थान गांधी जी की जन्मभूमि पोरबंदर की तरह समय के साथ संसार की सारी बुराइयों का केंद्र बन गया. गुंडों की छोटी-बड़ी अनगिनत टोलियां कुकुरमुत्तों की तरह उग आईं. अज़ीज़ दिलीप (जो हिन्दू से मुसलमान बना था और अपने दोनों नामों से जाना जाता था) दिखाने के लिए तो साइकिल की दुकान और ट्रांसपोर्ट का धंधा चलाता था; पर हक़ीक़त में शराब के तीन अड्डों का मालिक था. अय्यूब लाला, भिंडी बज़ार के करीब फ़ारस रोड का दादा था. वह चरस पीने वालों के लिए चंडूखाने चलाता था. दूसरी ओर मझगांव इलाके में शंकर मराठा नामक एक कुख्यात दादा की धाक थी. वह भी शराब के अड्डे की आमदनी पर ऐश करता था.

सूफ़ी के जन्म से पहले उसके पिता हुसेन अली भी इस ज़हर से अपने को नहीं बचा सके थे. कारण? शराब की नागिन गलियों में से फुंफकारती हुई घरों में प्रवेश करने लगी थी. इसका पहला शिकार बने हुसेन अली. सुबह उठ कर सबसे पहले एक पेग न पी लें, तो सुबह की चाय भी कड़वी लगती थी. दिन भर में उन्हें कम से कम एक बोतल तो चाहिए ही थी.

हुसेन अली स्वभाव से नेक इंसान थे. नमाज़, कुरान तथा इबादत में उन्हें पूरा यक़ीन था. वे खुद शराब को हाथ नहीं लगाना चाहते थे, पर शराब उनकी रग-में प्रवेश कर चुकी थी, लहू बनकर नस-में बहने लगी थी, आग बन कर आंखों में झांकने लगी थी.

उनकी पीड़ा क्या थी?

सूफ़ी बताता है, घड़ियाल गोदी में मेरे पापा हुसेन अली एक एजेंट के हाथ के नीचे क्लर्क का काम करते थे. इसमें कई प्रलोभन थे. दूर-दराज के देशों से आने वाले ष्ठ जूर के टोकरों की संख्या कम दिखा कर करोड़ो की कमाई की जा सकती थी. कभी-कभी ष्ठ जूर के नीचे तस्करी का माल भरा रहता था. पार्टी, कस्टम ऑफिसर को नोटों के बंडल थमा देती और माल पास हो जाता था. पर मेरे पापा के लिए हेराफेरी का काम करना मुश्किल था और मेरी मम्मी तपेदिक की शिकार हो गयीं.

उन दिनों टीबी का अर्थ मृत्यु होता था. जो भय आज कैंसर शब्द पैदा करता है, वही भय उन दिनों टीबी का था. उसे महारोग का लेबल लगाया गया था. हुसेन अली से यह सहन न हुआ.

उन्होंने शराब का सहारा लिया. सोचा था शराब के नशे में उनके सारे ग़म, सारी पीड़ाएं डूब जाएंगी. पर न उनका दु:ख दूर हुआ, न उनकी समस्या में कोई अंतर ही आया.

इस महारोग का इलाज क्लर्क की मामूली आमदनी से नहीं हो सकता, वह स्पष्ट था. जो जमा पूंजी थी, वह डॉक्टरों के बिल भरने में कब की खत्म हो चुकी थी. अब उनके सामने केवल दो रास्ते थे. ईमानदार बने रह कर पत्नी के प्राण से हाथ धोना या बदलते समय के मूल्यों को स्वीकार कर लेना.

इसी के समानांतर परिस्थिति खुद मेरे परिवार में पैदा हो गयी थी. मेरे पिता गुलाम हुसेन, जो करोड़ों में खेल रहे थे, जहाज़ के व्यवसाय में दादाजी के तबाह हो जाने पर पाई-पाई के मोहताज हो गए. जो आदमी कभी टाटा या बिड़ला की पंक्ति में खड़ा हो, युवा बुद्ध की तरह जिसे दु:ख की परछाईं भी स्पर्श न कर पाई हो, जिसका जीवन महल जैसी हवेली में बीता हो, वही जब फुटपाथ पर जा गिरे तो उसके मन पर क्या बीती होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है.

उन्होंने नौकरी स्वीकार कर ली. नहीं जमी, छोड़ दी. नई नौकरी में लगे. नौकरी करना उनके स्वभाव में नहीं था फलत: फिर नौकरी छोड़ी. परिवार को टिकाए रखने का उनका संघर्ष जारी था और उन्हें एक टोटका सूझा. हक़ीक़त में वह टोटका नहीं, विनाश काले विपरीत बुद्धि थी.

सूफ़ी अपनी आत्मकथा आगे बढ़ाते हुए कहता है, वह रात बरसात की रात थी. मूसलाधार बारिश हो रही थी. 10 वर्ग फुट की अपनी कोठरी में हुसेन अली जागते हुए बैठे थे. जब तक उनकी दुविधा का अंत ना हो, उन्हें नींद नहीं आने वाली थी, यंत्रणा से मुक्ति नहीं मिलने वाली थी.

हुसेन अली ने टीबी में घुलती पत्नी गुलबानु की ओर देखा. पत्नी उन्हीं को देख रही थी. उसी समय गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकी. हुसेन अली को मौत दिखाई दी.

पत्नी की दोनों आंखों के कानों में मौत के दो फ़रिश्ते दिखाई पड़े. नेकी और बदी का हिसाब लेने के लिए मानो वे दोनों अधीर होकर क़ब्रिस्तान से यहां दौड़े चले आए हों.

हुसेन अली ने निर्णय ले लिया. बिजली के एक कड़ाके की चमक में मानो उनके सामने सब कुछ स्पष्ट हो गया. सांप की केंचुल की तरह उन्होंने पुराने मूल्यों का चोला उतार कर नए मूल्यों को स्वीकार कर लिया.

कस्टम के अधिकारी उनके परिचित थे. ज़कात-शुल्क भरे बिना कस्टम से माल कैसे बाहर निकाला जा सकता है, इसकी युक्ति वे जानते थे, पर इसका उपयोग उन्होंने पहले कभी नहीं किया था. अब वे खुल कर करने लगे.

अर्थात, स्पष्ट करने के लिए मैंने सूफ़ी से कहा, तुम्हारे पापा खुद ही स्मगलिंग के चक्कर में फंस गए.

क्या उनको तस्कर की श्रेणी में रखा जा सकता है?

सूफ़ी मूंछों में मुस्कराया. वह मूंछों में मुस्कराता है, तो उसकी मुस्कान धारदार हो जाती है. बोला, आबिद भाई! एक बिल्कुल सादा सवाल उसने मेरे सामने रखा, आप स्मगलर किसे कहते हैं?

हिंदी फिल्मों में देखे तीस से भी अधिक खलनायकों के चेहरे मेरी आंखों के सामने से गुज़र गए. ये चेहरे रक्तरंजित थे, डरावने थे, घावों के निशाने वाले थे, डॉक्टरी टांकों वाले थे.

कुछ रामसे ब्रदर्स की हॉरर फिल्मों के पात्रों जैसे. कुल मिलाकार हर एक चेहरा भय, आतंक और क्रूरता का प्रतीक था.उत्तर के बदले चेहरे देख मैं सहज ही घबरा गया. फिर भी मैंने जवाब दिया, स्मगलर माने तस्कर.

और तस्कर माने?

जो व्यक्ति तस्करी का माल लाए, उसे तस्कर कहा जाता है.

सूफी ने मेरा भ्रम तोड़ा. क़ानून की नज़रों में स्मगलिंग का अर्थ है इवेजन ऑफ ड्यूटी, आयात या निर्यात किए गए माल पर ज़कात न भरना.

यानी कि जो व्यक्ति कर की चोरी करे वह तस्कर कहलाता है, सूफ़ी ने बात आगे बढ़ाई, अब यह बताओ कि दुनिया में कौन-सा व्यापारी है, जो कर न भरता हो. अगर आप मेरे प्रश्न से सहमत हों तो हर व्यापारी तस्कर है.

और मेरे पापा में भी व्यापारी का लहू था. उन्होंने सीमा-शुल्क या नूर भरे बिना माल की हेरा-फेरी की थी.

(अगले अंक मे जारी)

सावधान

आपका स्वास्थ्य खतरे में है...

हरेक आदमी सावधान हो जाए. लाल गाजर, आंखों को लुभाने वाला खीरा, ककड़ी और कई ऐसी दूसरी सब्जियां जो अपने रूप-रंग से आपको अपनी ओर खींचती हैं, उनका प्रभाव खाने के बाद ठीक उल्टा पड़ता है. जिन सब्जियों में रंग या रसायन पड़ा रहता है- सुई या किसी और माध्यम से- वे आपके स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह हैं.

सामान्य विकास को बाधित करने, मधुमेह का खतरा बढ़ाने, खून की कमी, त्वचा की एलर्जी और सांस की बीमारियों के साथ ही लगभग 65 तरह के खतरे आपकी सब्जियों में मौजूद हैं. धन्यवाद दें, उस नई जैव-संशोधित तकनीक (जीन मोडिफाइड टेक्नोलॉजी) को, जिसके जरिए आपकी सब्जियां उगाई जा रही हैं. ये सब्जियां पहले से ही लाखों भारतीयों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर रही हैं- लोग इनके खतरों से अनजान जो हैं. इससे भी खतरनाक यह कि आपके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को पलटा भी नहीं जा सकता है. क्यों. इस वजह से कि ऐसे खानों को जैव-संशोधित तकनीक से बनाया गया है और इसके अणुओं में ही बदलाव कर दिया गया है. इसी वजह से उनको अंग्रेजी नाम के संक्षिप्त रूप जीएम-खाद्यान्न के नाम से जाना जाता है.

वैसे खतरा यहीं नहीं थम जाता. सबसे खतरनाक खुलासा अभी बाकी है. खबर यह है कि हमारी सरकार देश के कृषि-उत्पादों को पूरी तरह से जीएम तकनीक में बदल देना चाहती है. यह काम सभ्य संसार के किसी और देश ने नहीं किया है.

सौभाग्य से जिन लोगों को जैव-संशोधित तकनीक के खतरे पता हैं, उन्होंने कार्रवाई शुरू कर दी है. उदाहरण के लिए कई ने सुप्रीम कोर्ट में इस तकनीक पर रोक लगाने की याचिका भी दाखिल की है. सबसे अचरज की बात यह है कि अधिकतर देशों में जैव-संशोधित खाद्यान्न के बारे में कानून स्पष्ट हैं, पर भारत में इस तरह के खाद्यान्न के आयात पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा हुआ है. हालांकि यह रोक कितनी कारगर है, यही देखने की बात है. इस तकनीक के बारे में बताते हुए यह तब ही समझ में आ जाता है, जब हम सुपरमार्केट में घूमते हैं और व्यक्तिगत तौर पर इन खाद्यान्नों की वहां उपस्थिति देखते हैं. संयोग की बात यह है कि मांसाहार करने वाले लोग भी जीएम तकनीक की वजह से उतने ही खतरे में हैं, जितने कि शाकाहारी. आखिर कैसे. इसका जवाब तलाशना बहुत आसान है. मांस, अंडे और सारे डेयरी उत्पाद भी उतने ही खतरनाक हो जाते हैं, अगर जानवरों ने जीएम उत्पाद खाए हों. यहां तक कि शहद भी अछूता नहीं, अगर मधुमक्खियां गलती से भी जीएम खाद्यान्न के संपर्क में आ गई हों. इस बिंदु पर जीएम खाद्यान्न के खतरों से अनजान लोग पूछ सकते हैं कि आखिर जीएम खाद्यान्न किस तरह से बनाया जाता है और उनको खतरनाक आखिर कौन सा तत्व बनाता है. वैज्ञानिकों का शोध बताता है कि किसी जीन को जबर्दस्ती घुसाने से किसी फसल का डीएनए बिगड़ जाता है. जैव-तकनीक की पूरी प्रक्रिया फसल में बहुआयामी बदलाव ला देती है.

जब किसी फसल के डीएनए में जीन को अतार्किक तरीके से डाला जाता है, तो उनकी स्थिति उनके काम को प्रभावित करती है. साथ ही, प्राकृतिक जीन को भी प्रभावित करती है. किसी पौधे की कोशिका को जीएम-फसल में बदलने की प्रक्रिया से पूरे जीनोम में सैकड़ों या हजारों परिवर्तन आ जाते हैं. इस क्षेत्र में काम कर रहे अधिकतर वैज्ञानिक इन परिवर्तनों के स्तर से अनजान हैं और किसी भी अध्ययन में व्यावसायिक जीएम-पौधों को बनाने के क्रम में पौधे के जीनोम में आए व्यापक परिवर्तन का अध्ययन नहीं किया गया है. ये व्यापक बदलाव कई तरह के स्वास्थ्यपरक प्रभाव और खतरे पैदा करते हैं.

जीएम खाद्यान्न दूसरे क्षेत्रों में भी कई सवाल पैदा करता है. क्या यह नैतिक है कि हम ईश्वर की बनाई रचना के साथ छेड़खानी करें. इसके बावजूद बड़े-बड़े निगम इंसानों द्वारा की जा रही इस छेड़छाड़ को व्यक्तिगत फायदे के लिए बढ़ावा दे रहे हैं, जो अरबों रुपए का कारोबार है. हालांकि जीएम खाद्यान्न के विरोधी वर्षों से इसके खिलाफ एक जोरदार अभियान चलाए हुए हैं, लेकिन उनकी आवाज दुनिया की सरकारें नहीं सुन रही हैं. भारत में वंदना शिवा जैसे पर्यावरणविद और द दक्कन डेवलपमेंट सोसायटी (डीडीएस) जैसे संगठन जीएम खाद्यान्न पर प्रतिबंध लगाने की दिशा में सराहनीय काम कर रहे हैं. डीडीएस के निदेशक खुले तौर पर अपनी कार्य योजना का खुलासा करते हुए बताते हैं, अब जब जीएम खाद्यान्न को हमारे बाजार में पहुंचाया जा रहा है, यह हमारे लिए और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि हम इनके खिलाफ अपनी लड़ाई को तेज करें. भारत में जीएम खाद्यान्न के क्षेत्र में बीटी-बैंगन पहला कदम है. अब वे बीटी-ज्वार बनाने की भी योजना बना रहे हैं. यह एक ऐसी फसल है, जो भारत की जनसंख्या के 35 फीसदी लोग खाते हैं. अगर इस तरह के जहरीले खाद्यान्न बाजार में आ गए, तो लाखों लोगों का स्वास्थ्य खतरे में पड़ जाएगा.

सामान्य विकास को बाधित करने, मधुमेह का खतरा बढ़ाने, खून की कमी, त्वचा की एलर्जी और सांस की बीमारियों के साथ ही लगभग 65 तरह के खतरे आपकी सब्जियों में मौजूद हैं. धन्यवाद दें, उस नई जैव-संशोधित तकनीक (जीन मोडिफाइड टेक्नोलॉजी) को, जिसके जरिए आपकी सब्जियां उगाई जा रही हैं. ये सब्जियां पहले से ही लाखों भारतीयों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा कर रही हैं- लोग इनके खतरों से अनजान हैं. इससे भी खतरनाक यह कि आपके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को पलटा भी नहीं जा सकता है. क्यों? इस वजह से कि ऐसे भोजनों को जैव-संशोधित तकनीक से बनाया गया है और इसके अणुओं में ही बदलाव कर दिया गया है. इसी वजह से उनको अंग्रेजी नाम के संक्षिप्त रूप जीएम-खाद्यान्न के नाम से जाना जाता है.

डॉक्टरों का कहना है कि बैंगन लिवर और पैंक्रियास को बीमारियों से बचाने में कारगर रहता है. हालांकि, बैंगन के परागकण भी एक-विविधता को खत्म करेगा, बल्कि एक खाने वाली चीज को भी बर्बाद कर देगा.

पर्यावरण में मानवीय दखल पर बेहद सावधान रहने की जरूरत है. जीएम खाद्यान्न के हानिकारक प्रभाव न केवल शताब्दी तक रह सकते हैं, बल्कि लाखों लोगों को अनपेक्षित खतरों में भी डाल देंगे.

साफ है कि बायोटेक कंपनियां यह जोर देकर कहती हैं कि इस तकनीक के फायदे इससे होने वाले खतरे को जायज ठहरा देते हैं. हालांकि कौन फायदे में रहेगा, और किस पर खतरा मंडरा रहा है, वह विवाद का विषय है. अधिक से अधिक कुछ लोगों को हर्बीसाइड-टॉलरेंट या कुछ कीटनाशकों से फायदा हो सकता है, पर अधिकतर लाभ उनको ही होगा, जो जीएम खाद्यान्न का विकास कर रहे हैं.

पूरी दुनिया में किए गए प्रयोग यह बताते हैं कि जीएम खाद्यान्न को बनाने में इस्तेमाल किए गए विषाणु अंगों को भी नुकसान पहुंचाते हैं और इनसे बनी फसल को खाने वाले चूहों की प्रतिरोधी-क्षमता भी नष्ट होती देखी गई है. हालांकि इंसानों पर उनके दुष्प्रभाव का अध्ययन अब भी प्राथमिक अवस्था में ही हैं. हाल ही में अपनी एक किताब में जेफरी एम स्मिथ ने कहा है कि दुनिया की सबसे ताकतवर कृषि-जैव प्रौद्योगिकी कंपनियों ने झूठ बोलकर अपने आलोचकों को खामोश करना चाहा है और समाज के स्वास्थ्य को ही खतरे में डाल दिया है. स्मिथ के मुताबिक समस्या यह है कि सरकारें इस दिशा में कोई सहयोग नहीं कर रही हैं. वे कहते हैं कि यह उनके अधिकार-क्षेत्र से बाहर की चीज है. इसी वजह से जीएम खाद्यान्न के संभावित खतरों और जहर की पहचान करना एक तकलीफदेह काम हो जाता है. हम वही अध्ययन पाते हैं, जो हमारी वेबसाइट पर ई-मेल के माध्यम से आते हैं या उन लोगों के जिनका हम व्यक्तिगत तौर पर इंटरव्यू करते हैं, या फिर जब हम तथ्यों की खोज के अपने मिशन पर होते हैं. अमेरिकी लोग पाचन, प्रतिरोधी-क्षमता और गैस की समस्या बताते हैं और यह समस्याएं तभी से बढ़ी हैं जब से जीएम-खाद्यान्न बाजार में आए हैं.

लगभग हरेक जीएम खाद्यान्न में इस्तेमाल किया जाने वाला एक प्रमोटर जीन इस तरह से बनाया गया है कि वह स्थायी तौर पर बाहर वाले जीन को मजबूत बना देता है. यह जीन किसी अलर्जिन, टॉक्सिन या पोषण-विरोधी तत्व को बढ़ा सकता है या फिर यह दूसरे जीनों का रास्ता बंद कर सकता है. अगर कोई जीएम प्रमोटर किसी निष्क्रिय विषाणु के आसपास इस्तेमाल किया जाए, तो यह विषाणु का उत्पादन बढ़ा सकता है जो संभावित तबाही को जन्म दे सकता है. जानवरों पर किए गए अध्ययन में खून जमने के समय में परिवर्तन, लिवर के आकार में दोष और दूध का कम उत्पादन देखा गया.

भारत में, जब जीएम खाद्यान्न की वजह से आपके स्वास्थ्य पर खतरा बेहद बढ़ गया है, तब सरकार की तरफ से कुछ अच्छे कदमों की खबर है. केरल सरकार ने प्रदेश को जीएम खाद्यान्न से मुक्त क्षेत्र घोषित कर दिया है. दूसरी अच्छी खबर यह है कि अमूमन विवादों से घिरे रहने वाले स्वास्थ्य मंत्री अंबुमणि रामदोस ने भी जीएम खाद्यान्न के खिलाफ मोर्चा खोल दिया है. हालांकि उत्साहित करने वाली इन खबरों की जीवन-अवधि काफी कम है, क्योंकि आम चुनाव जल्द ही होने वाले हैं. नए स्वास्थ्य मंत्री शायद इन आशंकाओं को दरकिनार भी कर सकते हैं. जीएम-खाद्यान्न के स्वास्थ्य पर होने वाले कुप्रभावों के बारे में जब तक व्यापक जाग-रूकता नहीं आएगी, तब तक भारत के लाखों नागरिकों की जान खतरे में ही रहेगी.

वीनू संदल

feedback.chauthiduniya@gmail.com

राशिफल

(29 मार्च से 4 अप्रैल तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

इस सप्ताह चर्चा का विशेष महत्व रहेगा. ऐसा इसलिए है क्योंकि साथियों या सहयोगियों के विचार आपसे अलग हो सकते हैं. यदि आप अपने विचारों को दृढ़ता से रखें तो दूसरों पर बढ़त बनाने में आप सफल होंगे. लेकिन अन्य लोगों के खिलाफ खड़े होना ही चुनौती नहीं है, अवसरों को भुनाने केलिए आपको तेजी से अपने विचारों और योजनाओं को लागू करने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता होगी. व्यवसाय संबंधित, संपत्ति के मामलों में जब तक आप अपने अधिकारों के लिए खड़े नहीं दिखते जीत की ओर जाने की संभावना नहीं बनेगी.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

आप नए क्षितिज की खोज कर चुके हैं अब वक्त है कि जो आपके दिल केसबसे करीब है उसे पाने के लिए जोरदार प्रयास करें. आपके सपने और आशाएं काफी मायने रखते हैं लेकिन उनकी पूर्ति के लिए जरूरी है कि आप अपनी दिनचर्या के बंधनों से आजाद होकर अपने काम के तरीके में बदलाव करें. ऐसा करके आप शीर्ष पर पहुंचने में शत प्रतिशत सफल होंगे. जाहिर तौर पर यह वक्त आगे बढ़ने और नए रिश्ते जोड़ने का है. कारोबार में अपनी प्रबंध क्षमता का विकास करना और नए गठजोड़ बनाना लाभकारी होंगे. नए सौदे आपके लिए फायदे लाएंगे.

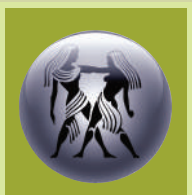

मिथुन
21 मई से 20 जून

यह सप्ताह अच्छा होगा, आप अपने लक्ष्यों और आदर्शों को पूर्व-नियोजित रास्ते से अलग ले जाने की करें. समय चुनौतियों से भरा है और जरूरी है कि चर्चाओं, नए विचारों और कूटनीति के माध्यम से जितना संभव हो सके जोर लगाएं. हालांकि अच्छी बात है कि आपके सामने विकल्प कम होंगे. योजना बनाने में आप जल्द ही निर्णय लें तो सफलता मिलेगी. व्यापार, विशेष रूप से निवेश में कदम बढ़ाने से पहले आपको व्यापार के बारे में अधिक पता करने की जरूरत है.

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

आप अपने हिस्से की आलोचना झेल चुके हैं. अब आपका अनुकूल समय आ रहा है. आपने जो बोया था उसका फल अच्छा ही प्राप्त होगा. इस हफ्ते आप पिरामिड के शीर्ष पर पहुंचेंगे जो कि आपके लिए अच्छा है. जिससे नए अवसर पैदा होंगे हालांकि बाद में आपको खुद को कई बार पूछना होगा कि पहले क्या करना है और बाद में क्या? इस तरह की कई दुविधाएं पैदा होंगी. साथ ही आप संतोषजनक ढंग से अपने कौशल को बढ़ाने में सफल होंगे और सौभाग्य से अपने प्रयासों के सहारे नई सहायता भी प्राप्त करेंगे.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

कई मायनों में यह लाभ के लिए एक अच्छा समय है. इस सप्ताह जहां प्रयास के साथ पुरस्कार भी मिलेंगे, बिना देरी की चिंता किए नई योजनाएं भी बना पाएंगे. इसके अलावा हाल का अनुभव निर्णय लेते समय आप के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगा. नए काम की शुरुआत के लिए उचित समय है. व्यवसाय में, नए निवेश के लिए यह बेहतर समय है. किसी प्रभावशाली आदमी का साथ आप की तरक्की के लिए फायदेमंद रहेगा. वित्तीय मामलों में नए कार्य लाभकारी होंगे.लेकिन किसी चालाक व्यक्ति से बच कर रहें.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

ध्यान रखिए, इस सप्ताह आपकी शक्ति रचनात्मकता के साथ-साथ नई परिस्थितिओं को समझ पाने पर केंद्रित रहेगी. अगर आप ऐसे लोगों से बच कर रहें जो आपकी योजनाओं को बिगाड़ सकते हैं तो आप सुरक्षित, खुश और संतुष्ट रहेंगे. कार्यस्थल पर अपने सीनियर्स से बचें, वे आपके सामने काम पूरा करने केलिए कोई असंभव समयसीमा रख सकते हैं. व्यापार में आपको एक ऐसा अवसर मिल सकता है जिससे उन योजनाओं और उपायों के लाभ और क्षमता का अंदाजा लगा सकें जिनकी शुरूआत आपने की है.

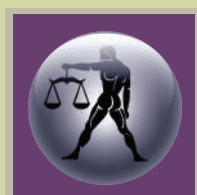

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

यह सप्ताह अपनी इच्छाओं को पूरा करने का है. हालांकि, अगर पहले आप किसी मुद्दे पर बोलते रहे हैं तो आपको अब अपनी बातों का तीखापन कम करना चाहिए. किसी के प्रति सहानुभूति रखना रोब जमाने से बेहतर है. प्रभावशाली लोग और पृष्ठभूमि में हो रही घटनाएं आपका सहयोग करेंगी. आपको इस बात का ध्यान रखना होगा कि आप सच्चाई से दूर होकर ऐसी योजनाएं बना लें इस समय संभव न हों. व्यापार में, कम अवधि में अधिक लाभ कमा सकते हैं. जल्दी पहल करें.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

कुछ ऐसी चीजें हो रही हैं जो आपको नए विकल्पों के बारे में सोचने पर मज़बूर कर रही हैं लेकिन चर्चा के बाद आप पाएंगे कि अभी अपने काम करने के तरीके में बदलाव लाने का कोई फायदा नहीं होगा. समझदारी यह होगी कि आप अपना ध्यान अपना फायदा बढ़ाने में लगाएं, खासतौर से जब आपके बॉस खुद को असुरक्षित महसूस कर रहे हों या कार्यस्थल पर प्रतिस्पर्धा बढ़ रही हो. व्यापार में इस हफ्ते लोगों से मेलजोल बढ़ाएं. लंबी अवधि की योजनाएं छोटी अवधि की योजनाओं से अधिक ध्यान खींचेंगी.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

किस्मत के खेल निराले हैं न? इस हफ्ते अच्छी बात है कि आप बिना मेहनत किए भी प्रशंसा के हकदार बनेंगे. हालांकि, जब आप ऐसी स्थिति में होते हैं तो आपसे अपेक्षाएं भी बढ़ जाती हैं. आपका पिछला अनुभव आपको निर्णय लेने में सहयोग करेगा. प्रभावशाली लोगों से आपकी निकटता शीर्ष तक पहुंचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा. व्यापार में, आपका भाग्य और परिस्थितियां आपकी संपत्ति में इजाफा करा रहे हैं.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

नए लोगों, नई जगहों और नए विचारों को जानना आपके लिए उम्मीद से अधिक ऊर्जा लाएगा. जितने अधिक लोगों के संपर्क में आप रहेंगे आप लाभ उतना अधिक होगा. आप नई जानकारियां पाने और अपने कौशल और ज्ञान को बढ़ाने में जुटे रहेंगे. साथ ही किसी प्रभावशाली व्यक्ति को आपके कौशल की ज़रूरत पड़ सकती है. समस्या यह है कि आप यह तय नहीं कर पा रहे हैं कि इसका लाभ कैसे उठाया जाए. आपको सलाह है कि जहां तक संभव हो अकेले बढ़ें. व्यापार में, आप बाज़ार की गतिविधियों को अपने लाभ के लिए इस्तेमाल कर सकेंगे.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

आप अपने कार्यक्षेत्र में पा रही सफलताओं का दौर ज़ारी रखेंगे. आप जिन बातों पर ध्यान दे रहे हैं उनके आकार और बारीकियों में आपकी ज़रूरतके मुताबिक बदलाव आएगा. इसका अर्थ यह है कि आपको जिन परिणामों की अपेक्षा है, उनमें कुछ आपको ज़ल्द ही मिल जाएंगे, लेकिन कुछ के लिए आपको लंबा इंतज़ार करना पड़ सकता है. यह तो तय है कि आपकी सफलता का रास्ता और आसान होता जा रहा है. व्यापार में, आप अपने निवेशों की स्थिति और उनके विकास से संतुष्ट रहेंगे. आप अपना लाभ बढ़ाने की स्थिति में होंगे.

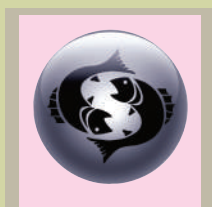

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

यह एक ऐसा सप्ताह है जिसमें आप बहुत से मुद्दों पर अपनी राय बिना घबराए तय कर पाएंगे. साफ है, आपको सोचने और काम करने के अपने पुराने तरीके को बदलने की जरूरत है. जरूरी है कि आप हर नई परिस्थितियों और उनकी मांगों के हिसाब से नए पैमाने तय करें. सौभाग्य से, आपको सही अवसर मिलते रहेंगे. अपनी राय तय करने के बाद जरूरी है कि आप दूसरों को आपका समय नष्ट न करने दें. व्यापार में, निवेश के नए मौके मिलेंगे और उनका लाभ पाने के लिए आपको अधिक जोखिम उठाने की ज़रूरतहै.

आने वाले त्योहार

चैत्र नवरात्र

चैत्र नवरात्र चैत्र माह के पहले दिन से प्रारंभ होता है. यह दिन भारतीय विक्रम संवत का भी पहला दिन यानी वर्षारंभ होता है. देवी दुर्गा की उपासना का यह पर्व नौ दिनों तक चलता है. इस नवरात्र को वासंती नवरात्र के नाम से भी जाना जाता है.

चैत्र शुक्ल प्रथमा से शुरू होकर यह पर्व चैत्र शुक्ल नवमी यानी रामनवमी तक चलता है. रामनवमी भगवान राम का जन्म दिन है. इस नवरात्र से रामकथा भी जुड़ी हुई है. माना जाता है कि दुर्गा पूजा जो आश्विन में भी मनायी जाती है पहले चैत्र में ही होती थी, भगवान राम ही इस पूजा को आश्विन में ले गए. कहा जाता है राम ने रावण से युद्ध करने से पहले शक्तिपूजा की. उन्होंने आश्विन मास में दुर्गा का आवाहन किया, तभी से वासंती नवरात्र के साथ शारदीय नवरात्र में भी दुर्गापूजा मनाने की परंपरा चल पड़ी. नवरात्र तो चारों ऋतुओं में होते हैं लेकिन शारदीय और वासंती नवरात्र का विशेष महत्व है.

नवरात्रि के नौ दिनों में भगवती दुर्गा के विभिन्न रूपों की उपासना की जाती है. इन रूपों को नवदुर्गा कहा जाता है. दुर्गा को शेरावाली भी कहा जाता है क्योंकि दुर्गा का अवतरण शेर की सवारी करते हुए ही हुआ था. कहा जाता है कि देवी कई रूपों में रहती हैं. इन रूपों की ही पूजा नवरात्र के दौरान की जाती है. पूजा के लिए पहले देवी के प्रतीक स्वरूप कलश की स्थापना की जाती है. सप्तमी आते-आते पंडाल सजने लगते हैं और सप्तमी के दिन भगवती की भव्य मूर्तियों का अनावरण किया जाता है.

पूजा के नौ दिनों में भक्त उपवास रखते हैं, मंदिरों में जाते हैं और प्रार्थना करते हैं. पंडालों में मेले की तरह का माहौल रहता है. इन पंडालों को फूलों और तरह-तरह के प्रकाश से सजाया जाता है. घरों में भक्त दुर्गा की प्रतिमाएं स्थापित करते हैं. भजनों और मंत्रों के माध्यम से देवी की पूजा की जाती है.

कई स्थानों पर जागरण का आयोजन किया जाता है जहां लोग रात भर जाग कर देवी के भजन गाते हैं, देवी की कहानियों पर चर्चा होती हैं, प्रसाद बांटे जाते हैं.

देवी के जिन नौ रूपों की उपासना की जाती है, वे क्रमशः शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुष्मांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री हैं. दशमी के दिन विसर्जन के साथ नवरात्र का समापन हो जाता है.

कन्या पूजा

नवरात्र के दौरान के महत्वपूर्ण आयोजनों में कन्या पूजा भी होती है. अष्टमी और नवमी के दिन भारत के कई क्षेत्रों में कन्या पूजा की जाती है. 12 वर्ष तक की कन्याओं को घरों में आमंत्रित किया जाता है, उनकी पूजा की जाती है और फिर उनको भोजन कराया जाता है.

इस प्रथा के पीछे देवी दुर्गा की एक कहानी है. कहा जाता है कि तांत्रिक भैरवनाथ को दंडित करने के लिए देवी ने बालिका का रूप धारण किया था. इसलिए नवरात्रि के समय कुंआरी बालिकाओं को देवी का रूप मान कर उनकी पूजा की जाती है.

काशी का है जलवा

काशी को ही बनारस तथा वाराणसी नाम से जाना जाता है. काशी शब्द का उद्भव कास शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ होता है चमकना. काशी को शिव एवं पार्वती द्वारा सृजित मूल भूमि माना जाता है जिस पर प्रारंभ में वह खड़े हुए थे. एक तो काशी और दूसरे गंगा तट. काशी का परिचय एक वाक्य में यही हो सकता है काशी- पापनाशी. रही बात गंगा की तो गंगा सर्वत्र ही तीर्थ स्वरुप है. काशी में उत्तर वाहिनी होने के कारण इसका महात्म्य और भी अधिक है. भारत की सबसे बड़ी नदी गंगा करीब 2525 किलोमीटर की दूरी तय कर गोमुख से गंगासागर तक जाती है. इस पूरे रास्ते में गंगा उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है. केवल वाराणसी में ही गंगा नदी दक्षिण से उत्तर दिशा में बहती है. धरा पर गंगा के आगमन से पूर्व भी काशी में तीर्थों की कमी नहीं थी. बनारस की पहचान एक आध्यात्मिक और चमत्कारिक नगरी के रूप में है. यह हजारों साल से उत्तर भारत का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है. बनारस या वाराणसी का नाम पुराणों, रामायण, महाभारत जैसे अनेकानेक ग्रन्थों में मिलता है. संस्कृत पढ़ने प्राचीन काल से ही लोग वाराणसी आया करते थे. इस नगर ने संस्कृत को न केवल बढ़ाया साथ ही इसका प्रचार प्रसार भी किया. वाराणसी के घाट गंगा नदी के धनुष की तरह बहने के कारण बड़े मनोहारी लगते हैं. बनारस में घाटों का दृश्य इसलिए दिलचस्प है क्योंकि वहां पर निरंतर सांस्कृतिक गातिविधियां होती रहती हैं. यह दिखाता है कि बनारस आधुनिक होने के साथ-साथ परंपराओं से भी जुड़ा हुआ शहर है. सभी घाटों के पूर्वाभिमुख होने से सूर्योदय के समय

बनारस की पहचान एक आध्यात्मिक और चमत्कारिक नगरी के रूप में है. यह हज़ारों साल से उत्तर भारत का धार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र रहा है. बनारस या वाराणसी का नाम पुराणों, रामायण, महाभारत जैसे अनेकानेक ग्रन्थों में मिलता है. संस्कृत पढ़ने प्राचीन काल से ही लोग वाराणसी आया करते थे.

घाटों पर पहली किरण दस्तक देती है. यहां अस्सी घाट से अधिक घाट हैं. घाट लगभग 4 मील लम्बे तट पर बने हुए हैं. इनमें से दशाश्वमेध, केदार, हरिश्चंद्र, मणिकर्णिका आदि प्रमुख घाट हैं. मणिकर्णिका घाट पर चिता की अग्नि कभी शांत नहीं होती, क्योंकि बनारस के बाहर मरने वालों की अंत्येष्टि पुण्य प्राप्ति केलिए यहीं की जाती है. कई हिन्दू मानते हैं कि काशी में मरने वालों को मोक्ष प्राप्त होता है.

मान्यता है कि काशी संसार की सबसे पुरानी नगरी हैं. फाल्गुन शुक्ल-एकादशी को काशी में रंगभरी एकादशी कहा जाता हैं. इस दिन बाबा विश्वनाथ का विशेष श्रृंगार होता है और काशी में होली का पर्वकाल प्रारंभ हो जाता है. मूल काशी विश्वनाथ मंदिर बहुत छोटा था. 18वीं शताब्दी में इंदौरा की रानी अहिल्याबाई होल्कर ने इसे भव्य रूप प्रदान किया. सिख राजा रंजीत सिंह ने 1835 ई. में इस मंदिर के शिखर को सोने से मढ़वाया था. काशी विश्वनाथ मंदिर का हिंदू धर्म में एक विशिष्ट स्थान है. ऐसा माना जाता है कि एक बार इस मंदिर के दर्शन करने और पवित्र गंगा में स्नान कर लेने से मोक्ष की प्राप्ति होती है. इस मंदिर में दर्शन करने केलिए शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, गोस्वामी तुलसीदास सभी का आगमन हुआ हैं.

काशी विश्वनाथ मंदिर बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक है. यह मंदिर पिछले कई हजारों वर्षों से वाराणसी में स्थित है.

बनारस एक ऐसा नगर है, जहां जाकर मनुष्य अद्भुत आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण हो जाता है. मुसलमान काफी संख्या में आज भी बनारस में हैं, जिनके यहां विशुद्ध शाकाहारी भोजन ही बनता है. काशी की गलियों में आज भी लाखों करोड़ों रुपए का रोजाना व्यवसाय होता है. सुप्रसिद्ध बनारसी साड़ियों का काम यहीं होता है. यहां बहुमंजिले भवनों की भरमार है. बनारस की गलियों का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितनी पुरानी काशी है. बनारस की रामलीला दुनिया भर के पर्यटकों को आकर्षित करती है क्योंकि यह भारत में होने वाली आम रामलीला के मंचन से एकदम अलग है. रामनगर की रामलीला सैंकड़ों साल पुरानी है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सात साल बाद विंडोज एक्सपी का अंत

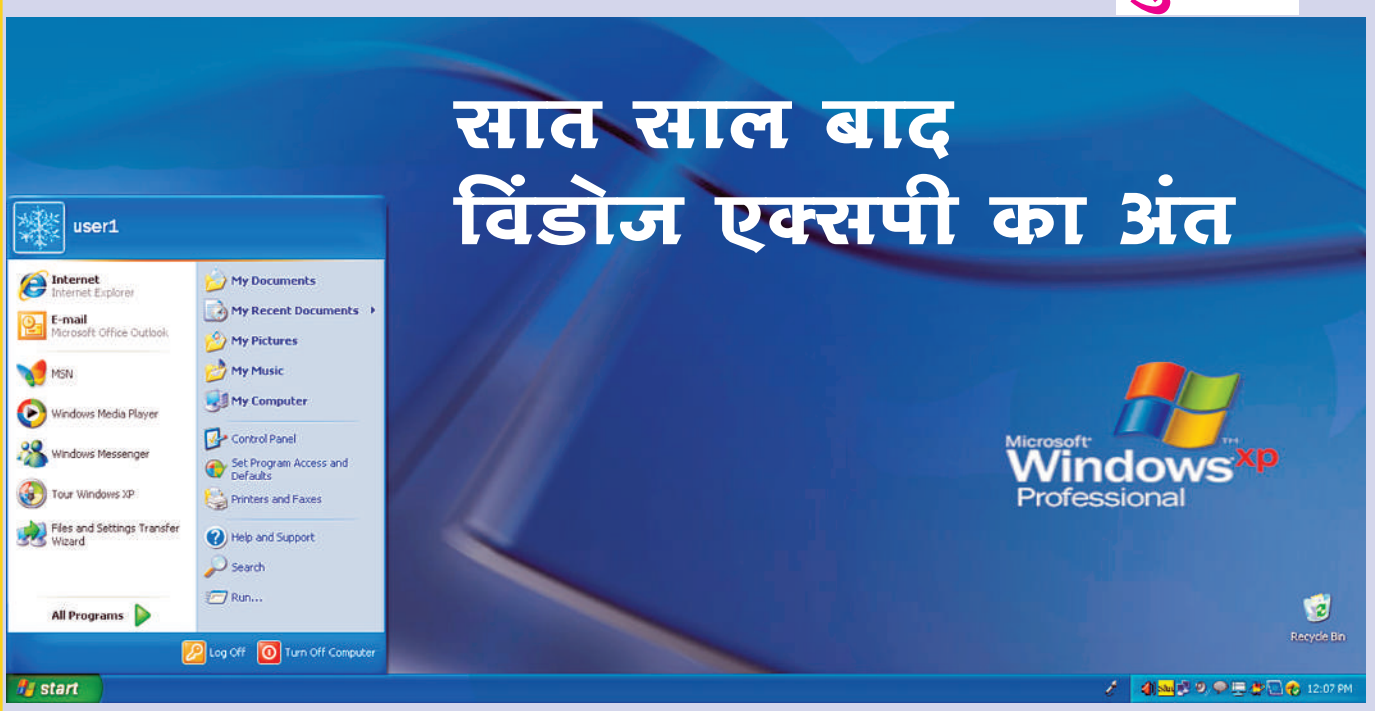

सात साल तक कंप्यूटर की दुनिया पर हावी रहने के बाद अब माइक्रोसॉफ्ट का विंडोज एक्सपी अपने अंत के करीब पहुंच गया है. माइक्रोसॉफ्ट ने जनवरी 2009 से ही एक्सपी को मार्केट से हटा लिया है और दो नए प्रोडक्ट विस्टा और विंडोज 7 को लांच किया है.

माइक्रोसॉफ्ट के इस कदम से देश भर में कंप्यूटर इस्तेमाल करने वाले परेशान हैं. उनके सवाल भी लाज़िमी है. क्या उनको अपना कंप्यूटर बदलना होगा? विंडोज एक्सपी के अपडेट कब तक माइक्रोसॉफ्ट मुहैया कराता रहेगा. कहीं माइक्रोसॉफ्ट नए ऑपरेटिंग सिस्टेम को थोप तो नहीं रहा.

हमने जब उपभोक्ताओं के इन सवालों का जवाब जानने की कोशिश की तो हमें कंपनी, रीटेल विक्रेता और कंप्यूटर एक्सपर्ट से कई जानकारियां मिली. सबसे पहली कि माइक्रोसॉफ्ट ने एक्सपी के अंत का एलान कर दिया है. जिसका मतलब कि अब वो ऑपरेटिंग सिसटेम विंडोज एक्सपी बाजार में नहीं बेचेगा. माइक्रोसॉफ्ट से आगे पड़ताल करने पर कि दिल्ली में विंडोज एक्सपी धड़ल्ले से बिक रहा है और उस पर रोक क्यों नहीं लगाई जा रही है तो कंपनी की तरफ से जानकारी दी गई कि रिटेल विक्रेता अपना स्टॉक क्लीयर कर रहे हैं और अगले कुछ महीनों तक वो पुराने स्टॉक को बेचते रहेंगे.

अब सवाल यह है कि क्या आज की तारीख में विंडोज एक्सपी खरीदना उचित होगा. नए कंप्यूटर के साथ विंडोज एक्सपी का इस्तेमाल करने पर क्या दिक्कतें आ सकती है. उन दिक्कतों से बचने के लिए क्या किया जा सकता है.

हममें से ज्यादातर लोग विंडोज एक्सपी पर काम करने के आदी हो चुकेहै. रोज़मर्रा के कामकाज में आने वाली दिक्कतों को आज हम खुद ही हल कर लेते हैं.बडी दिक्कतों को हल करने केलिए माइक्रोसॉफ्ट समय समय पर अपडेट देता रहता है.

भारत में बिकने वाले ज्यादातर कंप्यूटर हार्डवेयर विंडोज एक्सपी के साथ चलने के लिए निर्मित हैं. पिछले सात सालों में विंडोज एक्सपी के सहारे ही कंप्यूटर की बिक्री आसमान पर पहुंची है. बाजार से विंडोज एक्सपी हटाने में सबसे बड़ी समस्या हार्डवेयर की है. विंडोज़ 7 और विस्टा आपकी पुरानी मशीनों पर आसानी से नहीं इंस्टाल हो सकती है. इसके साथ ही कंप्यूटर के साथ इस्तेमाल हो रही अन्य मशीनें मसलन प्रिंटर, स्कैनर इत्यादि के ड्राइवर्स बाज़ार में नहीं है.

या तो वो अभी तक बनाए नहीं गए और अगर बने हैं तो उनकी कीमत बहुत अधिक है. इसके साथ ही दोनों नए ऑपरेटिंग सिस्टम पुराने एडमिनिस्ट्रेशन को चलाने में ज्यादा कारगर नहीं हैं. इसलिए अगर आप एक्सपी को छोड़कर नए ऑपरेटिंग सिस्टम को आज़माना चाहते हैं तो सबसे पहले आपको अपने पुराने कंप्यूटर की जांच करनी होगी कि क्या वो नए ऑपरेटिंग सिस्टम को सपोर्ट करेगा. इसके लिए जानकारी के साथ साथ परीक्षण माइक्रोसॉफ्ट की वेबसाइट पर किया जा सकता है.

हममें से ज्यादातर लोग विंडोज एक्सपी पर काम करने के आदी हो चुके है. रोज़मर्रा के कामकाज में आने वाली दिक्कतों को आज हम खुद ही हल कर लेते हैं.बडी दिक्कतों को हल करने के लिए माइक्रोसॉफ्ट समय- समय पर अपडेट देता रहता है.

हमने अपडेट के बारे में जब माइक्रोसॉफ्ट से जानकारी ली तो उसका दावा है कि वो 2010 तक इस सुविधा को जारी रखेगा और लोगों की दिक्कतों को दूर करता रहेगा. लेकिन यह भी तय है कि माइक्रोसॉफ्ट की कोशिश रहेगी कि जल्द से जल्द भारत में भी कंप्यूटर यूज़र्स विंडोस 7 और विंडोज़ विस्टा का इस्तेमाल शुरू कर दें.

लिहाजा आने वाले दिनों में एक्सपी की किसी बड़ी समस्या को तो माइक्रोसॉफ्ट ज़रूर हल करेगा, लेकिन समय के साथ-साथ उसका खत्म होना भी तय है. मसलन, आने वाले दिनों में एक्सपी के लिए सहायक सॉफ्टवेयर बनने बंद हो जाएंगे.

एंटी वायरस कंपनियों की प्राथमिकता से भी एक्सपी हट जाएगा और एक्सपी को लगातार सात साल से इस्तेमाल कर रहे लोगों को अब इसके सहारे काम करने में दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा.

टचस्क्रीन मोबाइल फोन्स

पिछले कुछ महीनों में कई हाई-एंड टचस्क्रीन फोन की बाज़ार में बहार सी आ गई. एचटीसी एच डी टच, सोनी एक्सपीरिया, ब्लैकबेरी स्टॉर्म और नोकिया 5800 एक्सप्रेसम्यूज़िक. ये सभी फोन्स टचस्क्रीन मोबाइल फोन बाज़ार में अपना मार्केट शेयर बढ़ाने की होड़ में हैं. टचस्क्रीन मोबाइल फोन का ये मार्केट तैयार किया है एप्पल के आईफोन ने. कैसे एक फोन दूसरे से अलग है. यह जानकर ही आप अपने लिए एक सही फोन चुन पाएंगे. यानी नोकिया 5800 एक्सप्रेसम्यूज़िक में ऐसा क्या है जो एचटीसी एचडी, ब्लैकबेरी स्टॉर्म और सैमसंग ओम्निया में नहीं. इसके लिए पिक्सेल पावर, स्पीकर और मेमोरी कैसी है, जानना पड़ेगा. तभी हो पाएगा सही फोन का फ़ैसला.

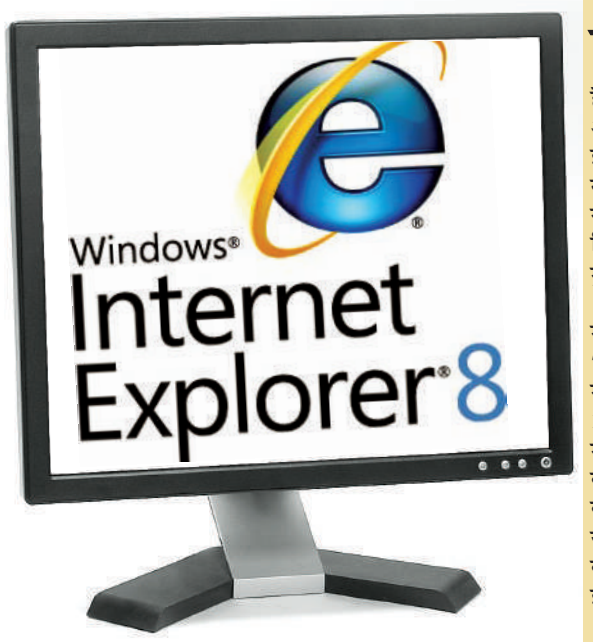

इंटरनेट ब्राउजर माइक्रोसॉफ्ट एक्सप्लोरर का नया वर्जन दुनियाभर में लांच हो चुका है. नया इंटरनेट एक्सप्लोरर 8 माइक्रोसॉफ्ट के नए ऑपरेटिंग सिस्टम विंडोज 7 के साथ लगकर भी आएगा. इंटरनेट एक्सप्लोरर 8 के टेस्ट वर्जन पर करीब एक साल से काम चल रहा था. अब इसका लांच सार्वजनिक हो गया है. जो लोग माइक्रोसॉफ्ट का लाइसेंस्ड ऑपरेटिंग सिस्टम इस्तेमाल करते हैं, वे पिछले सप्ताह से ही इसे मुफ्त डाउनलोड कर रहे हैं.

इस समय इंटरनेट ब्राउजिंग की दुनिया में माइक्रोसॉफ्ट का सिक्का चलता है. ब्राउजर मार्केट के 72.2 परसेंट पर इंटरनेट एक्सप्लोरर, 17.2 परसेंट पर मोजिला फायरफॉक्स, 2.8 परसेंट पर गूगल क्रोमा और 1 परसेंट पर एपल के ब्राउजर सफारी का कब्जा है. माइक्रोसॉफ्ट के प्रतियोगियों ने अदालतों में शिकायत की है कि विंडोज के साथ एक्सप्लोरर को बंडल करने की वजह से माइक्रोसॉफ्ट की मोनोपॉली हो जाती है. यूरोपीय अदालतों की सख्ती के बाद माइक्रोसॉफ्ट ने कहा है कि वो विंडोज 7 में ये फैसिलिटी देगा कि यूजर इंटरनेट एक्सप्लोरर को स्विच ऑफ कर पाएगा.

गेम - एंपायर : टोटल वार

साल 1750 - यह समय साम्राज्यों का है और उनके लिए लड़े जा रहे युद्धों का. भारत पर कब्ज़े के लिए ज़ंग हो रही है, अंग्रेज और फ्रांसीसी सेनाएं भारत पर हमला बोलने को तैयार हैं. यह किसी इतिहास की किताब की बोरिंग कहानी नहीं है. आप इस कहानी का हिस्सा हैं. इस बार आप इतिहास बदल सकते हैं. इस बार भारतीय सेना की कमान आपके हाथ में है. भारत को तो आप बचा ही सकते हैं, साथ ही आप भारत का एक नया साम्राज्य भी खड़ा कर सकते हैं. ...ये सब हो सकता है वर्चुअल वार गेम्स की दुनिया में. वर्चुअल वार गेम्स की कड़ी में नया धमाका है एंपायर : टोटल वार का.

एंपायर सीरीज़ की गेम का नया गेम टोटल वार आपको अठारहवीं सदी में ले जाता है. जहां दुनिया भर के देश साम्राज्यों की ज़ंग में उलझे हैं. गेम की सबसे बड़ी खासियत है कि यह उस समय की दुनिया की असली घटनाओं को ही आधार बनाता है यानी इतिहास की सच्चाई गेमिंग की फैंटेसी के साथ चलती है. यूं तो वर्चुअल गेमिंग के दीवाने नए-नए वर्चुअल हथियारों से खेलते रहते है लेकिन इस गेम में तलवारों और तोपों से लड़ने का मज़ा कुछ और है. गेम में अपने साम्राज्य को बढ़ाने के लिए खिलाड़ियों को लड़ाई के साथ-साथ अपने साम्राज्य के रख-रखाव पर भी ध्यान देना पड़ता है. हथियारों के साथ शिक्षा और विकास भी आपके साम्राज्य को सुरक्षित बनाते हैं. दरअसल इस गेम की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इस गेम में उस समय की दुनिया के सभी हालात का ध्यान रखा गया है जो गेम को और मज़ेदार बनाते हैं.

जिन लड़ाइयों का आप हिस्सा होते हैं वह ऐसी लड़ाइयां हैं जो दुनिया के इतिहास का एक अहम हिस्सा हैं.

गेम के ग्राफिक्स लाज़वाब हैं और सच्चाई का एहसास कराते हैं. 3 मार्च को अपने लांच से ही गेमिंग के दीवानों का दिल जीत कर यह साल का नंबर वन गेम बन गया है.

एंपायर सीरीज़ पहले से ही काफी लोकप्रिय रहा है और इस नए गेम से उसकी कोशिश साल 2009 की सबसे हिट गेम देने की है. एज ऑफ एंपायर से लेकर टोटल वार तक एंपायर सीरिज ने गेमर्स को लुभाया है. अमेरिकी बाजार में इस गेम में अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम पर आधारित दी रोड टू इंडिपेंडेंस नाम का अलग फीचर जोड़ा गया है. अधिकतर गेम आलोचकों ने इस गेम को खूब सराहा है.

भारत में ऑर्कुट के सामने फेसबुक हुआ बेकार

इंटरनेट पर दोस्ती,प्यार और कनेक्शन के लिए कई सारे पोर्टेल मौजूद हैं. हालांकि इन पोर्टल्स के कई सारे नुकसानदेह नतीज़े भी सामने आए हैं. चौंकाने वाली बात तो यह कि इनसे हुई दोस्ती के बाद लूट और हत्या जैसी घटनाएं भी हुईं हैं. बावज़ूद इन सबके इंटरनेट के माध्यम से अपने पुराने दोस्तों को तलाशने और नए दोस्त बनाने में कमी नहीं आई हैं. अब सवाल यह है कि देश में सबसे पॉपुलर पोर्टल कौन सा है.

हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण के मुताबिक भारत में ऑर्कुट, फेसबुक, लिंक्डइन और हाई 5 जैसे पोर्टल्स पिछले एक साल में काफी पॉपुलर हुए हैं. इन सारे पोर्टल्स में ज़बर्दस्त मुक़ाबला चल रहा है, लेकिन आंकड़े बताते हैं कि ऑर्कुट इन सबमें सबसे आगे चल रहा है. आंकड़ों के मुताबिक पिछले एक साल में ऑर्कुट ने सबसे अधिक लोगों को जोड़ा है.

जहां ऑर्कुट ने 1 मिलियन लोगों को अपने साथ जोड़ते हुए एक साल में 8 फीसदी की बढ़त ली है वहीं दूसरे नंबर पर फेसबुक ने पिछले साल में 4 मिलियन लोगों को जोड़ कर तकरीबन 10 फीसदी की बढ़त बनाई है.

तीसरे नंबर पर देशी पोर्टल भारत स्टूडेंट डॉट कॉम को भी 33 मिलियन लोग इस्तेमाल कर रहे हैं. ऑर्कुट और फेसबुक में शुरू हुई इस होड़ में सबसे खास बात ये है कि जहां ऑर्कुट पर मेंबरशिप लेकर दूसरे मेंबर्स के प्रोफाइल को देखा जा सकता है वहीं फेसबुक में प्रोफाइल देखने के लिए पहले मेंबर को अपने फ्रेंड लिस्ट में जोड़ना जरूरी होता है. इसके साथ ही प्राइवेसी के फीचर्स फेसबुक पर ऑर्कुट से बेहतर हैं. ऐसा नहीं कि फेसबुक को महज इसी आधार पर बेहतर मान लिया जाए. हाल ही में हुए फेसबुक विवाद, जिसमें कंपनी ने कॉपीराइट के नियमों में फेरबदल किया, जिसने फेसबुक की लोकप्रियता को नुकसान पहुंचाया है.

पूसी कैट डॉल्स ने की जय हो

ऑस्कर से सम्मानित रहमान के हिन्दी नंबर जय हो को अमेरिका की मशहूर महिला बैंड पूसीकैट डॉल्स ने स्टेज पर प्रदर्शित किया. हिदी नंबर को ही लिप सिंक (महज होंठ हिलाना) की मदद से बैंड की लीड सिंगर निकोल स्क्रेजिंगर ने गाया. इस गाने की धुन से निकोल इतना ज्यादा प्रभावित हुईं कि वह अब जय हो की लिरिक्स को अंग्रेजी में लिखकर अपने नए एल्बम में शामिल करने की तैयारी कर रही हैं. यह कोई पहला मौका नहीं जय हो की जय-जय कार हो रही है. इससे पहले कांग्रेस ने गाने के राजनीतिक महत्व को समझते हुए और हाल में ही होने वाले चुनावों में प्रचार करने के मकसद से करीब एक करोड़ रुपए में गाने का कॉपीराइट खरीदा है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

क्रिकेट की कब्रगाह बन गया है पाकिस्तान

आश्चर्य बस एक बात पर नहीं होता कि यह सारा कुछ पाकिस्तान में हुआ. इस घटना ने दुबारा यह साबित कर दिया है कि पाकिस्तान का खेल प्रशासन फेल हो चुका है. अकेले खेल प्रशासन ही क्यों यहां तो पूरा का पूरा देश असफल होने की होड़ में जुटा लगता है. बर्बादी के कगार पर खड़े एक राज्य - इन हालातों में पाकिस्तान को राष्ट्र कहना व्यावहारिक बात तो कतई न होगी - से इससे अलग उम्मीद भी नहीं थी.

पावस नीर

क्रिकेट पर हमला हुआ. मैच खेलने जा रही श्रीलंकाई क्रिकेट टीम पर लाहौर में आतंकवादियों ने हमला किया. क्रिकेट आयोजनों पर आतंक के बादल तो पहले से ही मंडरा रहे थे लेकिन क्रिकेट इतिहास में पहली बार ऐसा हुआ है कि किसी टीम पर सीधा हमला हुआ हो. पहली बार आतंकी हमले की मार क्रिकेट के खिलाड़ियों को सीधे झेलनी पड़ी है. पहली बार किसी घटना में खिलाड़ी घायल हुए.

लाहौर के गद्दाफी स्टेडियम के बाहर लिबर्टी मार्केट में करीबन 12 आतंकवादियों ने श्रीलंकाई टीम बस पर हमला किया. फायरिंग के साथ ग्रेनेड हमला भी हुआ. श्रीलंकाई टीम के छह खिलाड़ी और टीम स्टाफ घायल हुए. थरंगा प्राणविताना, कुमार संगाकारा, समरवीरा, जयवर्धने, मेंडिस, वास और टीम स्टाफ पॉल फारब्रेस गोलियों और बम के छर्रों से घायल हुए. दौरे के जारी रहने का तो खैर सवाल ही नहीं था, सो श्रीलंकाई टीम को जल्द से जल्द पाकिस्तान से वापस ले जाया गया.

यह पूरा घटनाक्रम चौंकाने वाला था. लाहौर की यह घटना 1972 के म्यूनिख ओलंपिक की याद दिलाती है. 5 सितंबर को फिलिस्तीनी आतंकवादी ओलंपिक के खेलगांव में घुस गए थे. ब्लैक सितंबर नाम के संगठन के आतंकवादियों ने 11 इज़रायली खिलाड़ियों की बंधक बनाने के बाद हत्या कर दी थी. इस घटना ने खेल आयोजनों का भविष्य ही बदल कर रख दिया था. कहीं न कहीं सुरक्षा में चूक हुई थी. तब से सभी खेल आयोजन संगीनों के साए में हुए हैं. क्रिकेट भी अपने हिस्से का आतंकवाद झेल रहा था, लेकिन अब तक किसी भी घटना में खिलाड़ियों को निशाना नहीं बनाया गया था. जाहिर है मकसद ज्यादा से ज्यादा ध्यान बटोरना है. इस तरह खिलाड़ियों को सीधे निशाना बनाने की पूरी घटना आश्चर्यजनक है. आश्चर्य बस एक बात पर नहीं होता कि यह सारा कुछ पाकिस्तान में हुआ. इस घटना ने दुबारा यह साबित कर दिया है कि पाकिस्तान का खेल प्रशासन फेल हो चुका है. अकेले खेल प्रशासन ही क्यों यहां तो पूरा का पूरा देश असफल होने की होड़ में जुटा लगता है. बर्बादी की कगार पर खड़े एक राज्य- इन हालातों में पाकिस्तान को राष्ट्र कहना व्यवहारिक बात तो कतई न होगी- से इससे अलग उम्मीद भी नहीं थी.

ऐसा नहीं है कि सिर्फ पाकिस्तान ही क्रिकेट में आतंकवाद का शिकार बना है, दक्षिण-पूर्व एशिया और अफ्रीका के देशों में आतंकवाद से खेल आयोजनों को हमेशा नुकसान हुआ है. सुरक्षा कारणों से कई बार दौरे रद्द भी हुए, देशों ने श्रीलंका और जिम्बावे जैसे देशों में खतरे के नाम पर खेलने से मना भी किया है, लेकिन पाकिस्तान जैसी हालत कभी नहीं हुई.

इस घटना की पड़ताल जरूरी है, हमला ठीक उस स्टेडियम के बाहर हुआ जहां श्रीलंका और पाकिस्तान के बीच दूसरा टेस्ट चल रहा था. यह दौरा खुद एक स्टाप गैप दौरा था. इस टेस्ट सीरिज के पहले की परिस्थितियां याद करें, भारत के दौरे के पर न आने और फिर चैंपियंस ट्रॉफी के रद्द होने से पाकिस्तान की साख मिट्टी में मिल चुकी थी. एक किस्म का बहिष्कार झेल रहा पाकिस्तानी क्रिकेट जिम्बावे और रंगभेद के दिनों के दक्षिण अफ्रीका की तरह अपनी अंतरराष्ट्रीय पहचान गंवाने की कगार पर था. तब श्रीलंका टीम ने पाकिस्तान का दौरा करने का फैसला कर पाकिस्तान को राहत दी थी. यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि जो दौरा पाकिस्तान की अंतरराष्ट्रीय पहचान वापस दिला सकता था उसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी पाकिस्तान का सुरक्षा तंत्र नहीं निभा सका. पाकिस्तान की इस चूक ने विश्व क्रिकेट मानचित्र पर उसकी वापसी के रास्ते बंद कर दिए हैं, साथ ही श्रीलंका के रूप में उसने अपना आखिरी पैरोकार भी खो दिया है. श्रीलंकाई टीम को पाकिस्तान के साथ क्रिकेटिंग रिश्ते निभाने की जो कीमत चुकानी पड़ी है उसके बाद कोई भी टीम पाकिस्तान आने की सोचेगी भी नहीं. पाकिस्तानी क्रिकेटप्रेमियों के लिए यह बात निराशाजनक भले हो लेकिन वे भी समझ रहे हैं कि अब पाकिस्तान में खेलना एक जानलेवा खेल बन गया है. फिर यह कोई पहली बार तो नहीं कि पाकिस्तान में आतंकवाद ने खेल को शिकार बनाया हो. पिछले कुछ सालों में दुनिया भर की टीमों को आतंकी घटनाओं की वजह से अपने पाकिस्तानी दौरे रद्द किए हैं.

पाकिस्तान की इस चूक ने विश्व क्रिकेट मानचित्र पर उसकी वापसी के रास्ते बंद कर दिए हैं, साथ ही श्रीलंका के रूप में उसने अपना आखिरी पैरोकार भी खो दिया है.

आंकड़े पाकिस्तान के खिलाफ बोलते हैं. तो क्या पाकिस्तान के क्रिकेट परिदृश्य के लिए अब कोई उम्मीद नहीं दिखती? जवाब होगा नहीं, यह जवाब अफसोसनाक भले हो लेकिन वास्तविकता यही है. दरअसल पाकिस्तान में आजकल जिस तरह से आतंकवाद, राजनीतिक और सैनिक मसलों पर आपसी सरफुटौव्वल चल रही है, उसमें पाकिस्तान का खुद का अस्तित्व बचता नहीं दिखता, क्रिकेट आयोजनों का मसला तो दूर का है.

इस पूरी घटना में एकमात्र अच्छी बात यह रही कि किसी खिलाड़ी की जान नहीं गई, नहीं तो इस घटना के परिणाम दुनिया के लिए चौंकाने वाले होते. लाहौर जैसी घटनाओं के दुहराव से बचने के लिए जरूरी है कि वास्तविकता को समझा जाए. पाकिस्तान जैसे देशों के हालात से सबक लेकर फैसले किए जाएं. खेल को मैदानी जोर-आजमाइश तक ही रहने दिया जाए, जिंदगी से खिलवाड़ का खेल ना बनने दिया जाए.

पाकिस्तान में हालात काफी गंभीर हैं. खिलाड़ियों पर हुए इस हमले ने उसकी बची-खुची साख भी खत्म कर दी है. पाकिस्तान क्रिकेट अब गहरे संकट में फंस चुका है.

अगले विश्व कप यानी 2011 में उसकी मेजबानी भी ख़तरे में पड़ गई है. आईसीसी की भवें पहले ही तनी हुई थीं. इस हमले ने आईसीसी के लिए फ़ैसला लेने का काम आसान ही किया है. हालांकि आधिकारिक निर्णय अभी होना बाक़ी है, पर हालात तो यही बताते हैं कि पाकिस्तान बहिष्कृत होगा.

pawas.chauthiduniya@gmail.com

सचिन अपने बल्ले से बोलते हैं...

खैर सचिन ने कभी इन आलोचकों को जवाब देने की ज़हमत नहीं उठाई है. इस बार भी जवाब उसी ने दिया जो हमेशा से देता आया है यानी सचिन के बल्ले ने. सचिन नहीं बोलते उनका बल्ला बोलता है. उस दिन जब वह बोला तो सबकी बोलती बंद हो गई. जब सचिन उस दिन बल्लेबाज़ी करके लौटे तो उनके आलोचकों के हर सवाल का जवाब स्कोरबोर्ड पर लिखा था.

8 मार्च 2009 को न्यूजीलैंड के क्राइस्टचर्च में भारत-न्यूजीलैंड श्रृंखला के तीसरे एकदिवसीय में जब सचिन तेंदुलकर बल्लेबाजी करने उतरे होंगे, तो उनके दिमाग में कहीं न कहीं 15 साल पहले की धुंधली याद जरूर होगी. 15 साल पहले न्यूजीलैंड के ही नेपियर में उन्होंने पहली बार भारतीय पारी की शुरुआत की थी. होली के उस दिन सचिन ने 88 रन बनाए और पहली बार पावर-प्ले का मतलब समझाया था. बल्ले से खेली वह होली सचिन को जरूर याद होगी लेकिन सचिन को यह बात भी याद होगी कि न्यूजीलैंड की धरती पर उनके शतकों का खाता अब तक खाली है. बात याद न भी रही हो तो उन आलोचकों ने जरूर उसकी याद ताजा कर दी होगी जो ऐसे आंकड़ों को उछाल कर सचिन की क्षमता पर सवाल खड़े करते रहते हैं.

खैर सचिन ने कभी इन आलोचकों को जवाब देने की ज़हमत नहीं उठाई है, इस बार भी जवाब उसी ने दिया जो हमेशा से देता आया है यानी सचिन के बल्ले ने. सचिन नहीं बोलते उनका बल्ला बोलता है. उस दिन जब वह बोला तो सबकी बोलती बंद हो गई. जब सचिन उस दिन बल्लेबाज़ी करके लौटे तो उनके आलोचकों के हर सवाल का जवाब स्कोरबोर्ड पर लिखा था, आंकड़ा था 133 गेंदों पर 163 रन, 15 चौके और 5 बार गेंद मैदान से बाहर.

टेस्ट श्रृंखला से पहले सचिन के आलोचक न्यूजीलैंड में सचिन के टेस्ट रिकॉर्ड पर सवाल उठा रहे थे. सचिन की फिटनेस और न्यूजीलैंड के पिचों पर उनकी कमजोरियों पर चर्चा हो रही है. सचिन की सफलता पर सवालिया निशान खड़ा किया जा रहा था. सचिन ने हेमिल्टन में पहले ही मैच में सारे जवाब दे दिए. पहली ही पारी में सचिन ने सैंकड़ा ठोक दिया, 26 चौके लगे और देखते देखते सचिन 160 तक जा पहुंचे.

ऐसा पहली बार नहीं हुआ कि सचिन के बल्ले ने ऐसा जवाब दिया हो. जब कभी भी सचिन के खेल पर सवाल उठे, उनकी क्षमता पर संदेह किया गया, उनकी आलोचना हुई सचिन के बल्ले ने जवाब दिया है. इस बात की गवाही दुनिया के वे तमाम खिलाड़ी देंगे जिनका सामना सचिन और सचिन के बल्ले से हो चुका है.

इंग्लैंड के तेज़ गेंदबाज एंड्रू कैडिक सचिन के बल्ले की ताकत से वाकिफ़ हैं. 2003 के विश्वकप में जब भारत इंग्लैंड का मुकाबला होना था तो एक दिन पहले कैडिक ने कह डाला कि सचिन कोई तोप नहीं जिनसे डरा जाए. अगली सुबह सचिन ने मैच में कैडिक की ऐसी धुनाई की कि एक गेंद को स्टेडियम से बाहर भेज दिया. सचिन के जवाब देने का यही अंदाज है.

जिम्बावे के हेनरी ओलोंगा ने जब एक मैच में सचिन को सस्ते में आउट कर दिया तो ओलोंगा ने कहा सचिन नहीं हैं सर्वश्रेश्ठ यह बात सचिन के बल्ले को नहीं भाई, तो अगला मैच 10 विकेट से जीता और ठोक दिए 83 गेंदों पर 123 रन, ओलोंगा ने चार ओवर में 44 रन दिए.

2007 के विश्व कप में भारत के खराब प्रदर्शन के बाद इयान चैपल ने सचिन को संन्याास लेने की सलाह दे डाली. इससे पहले इयान के भाई ग्रेग चैपल की सलाह (जो उस समय भारतीय क्रिकेट टीम के कोच थे) ने पहले ही भारतीय क्रिकेट का बेड़ा गर्क करा रखा था. सचिन ने इयान की सलाह का शुक्रिया अदा करते हुए साउथ अफ्रीका के ख़िलाफ अगले दो मैचों में 90 से ऊपर का स्कोर बना डाला, सचिन के अंदाज़ ने दिखा दिया कि उनमें बहुत खेल बाकी है. इयान चुप हो गए और ग्रेग को बाहर का रास्ता दिखा दिया गया.

विरोधी टीम के खिलाड़ी हों या आलोचकों की जमात, सभी ने सचिन के बल्ले का जलवा देखा है. सचिन का लोहा भी माना है. शेन वार्न -जिन्हें सपने में सचिन दिखते थे- ने जब दुनिया के 50 महान खिलाडियों की फेरहिस्त बनाई तो सचिन उसमें सबसे ऊपर थे. विरोधियों को भी अपना मुरीद बनाना सचिन की खासियत है. सचिन मे कभी अपने आलोचकों के खिलाफ कुछ नहीं कहा.

हां, ऐसे उदाहरणों की लंबी फेरहिस्त है जब सचिन के बल्ले ने बड़े-बड़े आलोचकों का मुंह बंद किया हो. सचिन की इन पारियों को देखकर कभी कभी लगता है कि क्रिकेट प्रेमियों को इन आलोचनाओं का शुक्रिया अदा करना चाहिए.

सचिन के आंकड़ों पर यह माथापच्ची हर सीरिज से पहले होती है इसलिए घबराने की कोई जरूरत नहीं दिखती. घबराहट की बात तो न्यूजीलैंड के लिए है. अगर सचिन का अपने आलोचकों को जवाब देने का वही अंदाज़ जारी रहा जो क्राइस्टचर्च और हेमिल्टन में दिखा है तो न्यूजीलैंड के लिए इस आंधी को रोकना मुश्किल नहीं नामुमकिन होगा.कहने की ज़रूरत नहीं कि इस दौरे के बाद न्यूजीलैंड के कई गेंदबाजों को सपने में सचिन दिखेंगे.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मुश्किलों के बीच रास्ता

तलाशती भारतीय महिला क्रिकेट टीम

भारत की महिला क्रिकेट टीम को एक बार फाइनल और दो बार सेमीफाइनल में पहुंचने केबावजूद अब भी विश्व चैंपियन बनने का इंतजार है.

भारतीय महिला क्रिकेट टीम विश्व कप में तीसरे नंबर पर रही. क्रिकेट के दीवानों को भी भले ही यह पता न हो कि आस्ट्रेलिया में नौंवा महिला विश्व कप क्रिकेट चल रहा था लेकिन उन्हें यह जानकर हैरानी होगी कि क्रिकेट में विश्व कप जैसे बड़े टूर्नामेंट की शुरुआत पुरुषों ने नहीं बल्कि महिलाओं ने की थी. महिलाओं का विश्व कप पुरुषों के विश्व कप से भी पुराना है. इसकी शुरूआत 1973 में इंग्लैंड में हुई थी. इसके दो साल बाद पुरुषों का विश्व कप खेला गया था. महिला विश्व कप क्रिकेट की कहानी बड़ी रोचक है. इसमें इंग्लैंड की पूर्व कप्तान और 1999 में एमसीसी में शमिल होने वाली पहली महिला राचेल फ्लिन्ट और फुटबाल क्लब वोल्वरहमटन वांडर्स के मालिक और 2008 में ब्रिटेन के धनी व्यक्तियों की सूची में 501 वें स्थान पर काबिज जैक हेवार्ड ने अहम भूमिका निभाई थी. हेवार्ड ने 1971 में इंग्लैड की महिला टीम के वेस्टइंडीज दौरे का खर्चा उठाया था और इसलिए जब फ्लिन्ट ने एक शाम बातों-बातों में उनके सामने विश्व कप जैसा टूर्नामेंट आयोजित करने का प्रस्ताव रखा तो उन्होंने इसे तुरंत स्वीकार कर लिया. हेवार्ड ने विश्व कप के लिए तब 40 हजार पौंड की धनराशि दी थी.

हेवार्ड के इस कदम की तब कुछ लोगों ने खिल्ली भी उड़ाई थी. एक बार उनसे किसी ने पूछा था कि वह महिला क्रिकेट पर इतनी अधिक धनराशि क्यों खर्च कर रहे हैं. इस पर उन्होंने जवाब दिया था कि मैं महिलाओं को चाहता हूं और इससे बेहतर क्या हो सकता है. फ्लिन्ट और हेवार्ड के प्रयास से 20 जून में 28 जुलाई 1973 के बीच पहला महिला विश्व कप आयोजित किया गया. महिला विश्व कप पर इसके बाद कई बार संकट के बादल मंडराए लेकिन फ्लिन्ट और हेवार्ड का प्रयास पुरुष विश्व कप के लिए प्रेरणा बना जो पहली बार इसके दो वर्षों बाद 1975 में आयोजित जिसका प्रायोजक प्रूडेंशियल था. दिलचस्प बात यह है कि महिला विश्व कप का पहला विजेता इंग्लैड पुरुष विश्व कप में तीन बार फाइनल में पहुंचने के बाद अभी तक चैंपियन नहीं बन पाया है.

कपिल देव की अगुआई में भारतीय टीम ने 1983 में विश्व कप जीतकर इतिहास रचा था लेकिन भारत की महिला क्रिकेट टीम को एक बार फाइनल और दो बार सेमीफाइनल में पहुंचने के बावजूद अब भी विश्व चैंपियन बनने का इंतजार है. अभी तक भारतीय क्रिकेट महिलाओं ने आठ में से छह बार हिस्सा लिया है. भारतीय महिला क्रिकेट टीम तीन टूर्नामेंट में सेमीफाइनल तक जरूर पहुंची है.

भारतीय पुरुष टीम सौरव गांगुली की अगुआई में 2003 में खेले गए विश्व कप के फाइनल में पहुंची थी. इसके दो साल बाद 2005 में मिताली राज के नेतृत्व में महिला टीम ने भी यह उपलब्धि हासिल की. इन दोनों टूर्नामेंट में इसके अलावा यह समानता है कि इन दोनों का आयोजन दक्षिण अफ्रीका में किया गया और भारत की दोनों टीमें फाइनल में आस्ट्रेलिया से ही पराजित हुई. भारतीय टीम के पिछले विश्व कप मैचों के प्रदर्शन में महिलाओं का पुरुषों के मुकाबले ज्यादा अच्छा प्रदर्शन देखा गया है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

2004-2008 तक भारत क्रिकेट का रिकार्ड

एकदिवसीय अंतरराष्ट्रीय मैच

टीम	कुल मैच	जीते	हारे	कोई नतीजा नहीं	प्रतिशत
भारतीय पुरुष क्रिकेट टीम	159	82	58	19	51.57
महिला क्रिकेट टीम	78	41	34	03	52.56

टेस्ट मैच

टीम	कुल मैच	जीते	हारे	कोई नतीजा नहीं	प्रतिशत
भारतीय क्रिकेट पुरुष टीम	57	23	13	21	40.35
महिला क्रिकेट टीम	07	02	03	02	28.57

बॉलीवुड का नया प्यार
बन रही हैं दिल्ली

सोनिका अग्रवाल

सैफ-करीना अभी पिछले दिनों दिल्ली में थे, राजपथ पर उनकी अगली फिल्म की शूटिंग चल रही थी. उनकी एक झलक देखने को बेकरार जनता को संभालना मुश्किल हो रहा था. जाहिर है राजपथ पर सीन फिल्माने की अनुमति भी मुश्किल से मिली थी. शायद मुंबई के किसी स्टुडियो में शूट करना ज्यादा आसान होता, लेकिन सीन यहीं फिल्माया गया. फिल्मकारों की मानें तो वजह इस फिल्म की कहानी का ऐसा अहम किरदार है जो कहीं और नहीं मिल सकता- दिल्ली.

2006 में एक फिल्म आई थी खोसला का घोंसला. इस फिल्म में एक पात्र कहता है दिल्ली में सबकुछ मिल जाता है साहब, लेकिन अच्छा प्लॉट (जमीन) नहीं मिलता. भारतीय सिनेमा के हालिया ट्रेंड्स पर नजर डालें तो लगता है फिल्मकारों को दिल्ली में अपनी कहानियों के लिए प्लॉट्स ही प्लॉट्स नजर आते हैं. पिछले कुछ सालों में दिल्ली में आधारित कहानियों ने बॉलीवुड में ख़ूब जगह बनाई है. 2009 की पहली तिमाही की सभी बड़ी फिल्में भी यही बात दुहराती हैं, एक मामूली रसोइए के चांदनी चौक से चीन तक पहुंचने की कहानी हो या पहाड़गंज की गलियों में भटकता देवदास का नया अवतार हो, सीलिंग की मार झेलते एक दिल्ली वाले की जिंदगी के जुगाड़ की कॉमेडी हो या पुरानी दिल्ली की गलियों में बसी दिल्ली-6 की दास्तां... दिल्ली बॉलीवुड का नया दिल बन गई है. हाल में कई बड़ी फिल्मों की शूटिंग भी दिल्ली में हुई है. मुंबइया ग्लैमर और भागदौड़ से दूर दिल्ली की गलियों की अलग लाइफस्टाइल और उसका मध्यवर्ग बॉलीवुड का ध्यान अपनी ओर खींच रहा है.

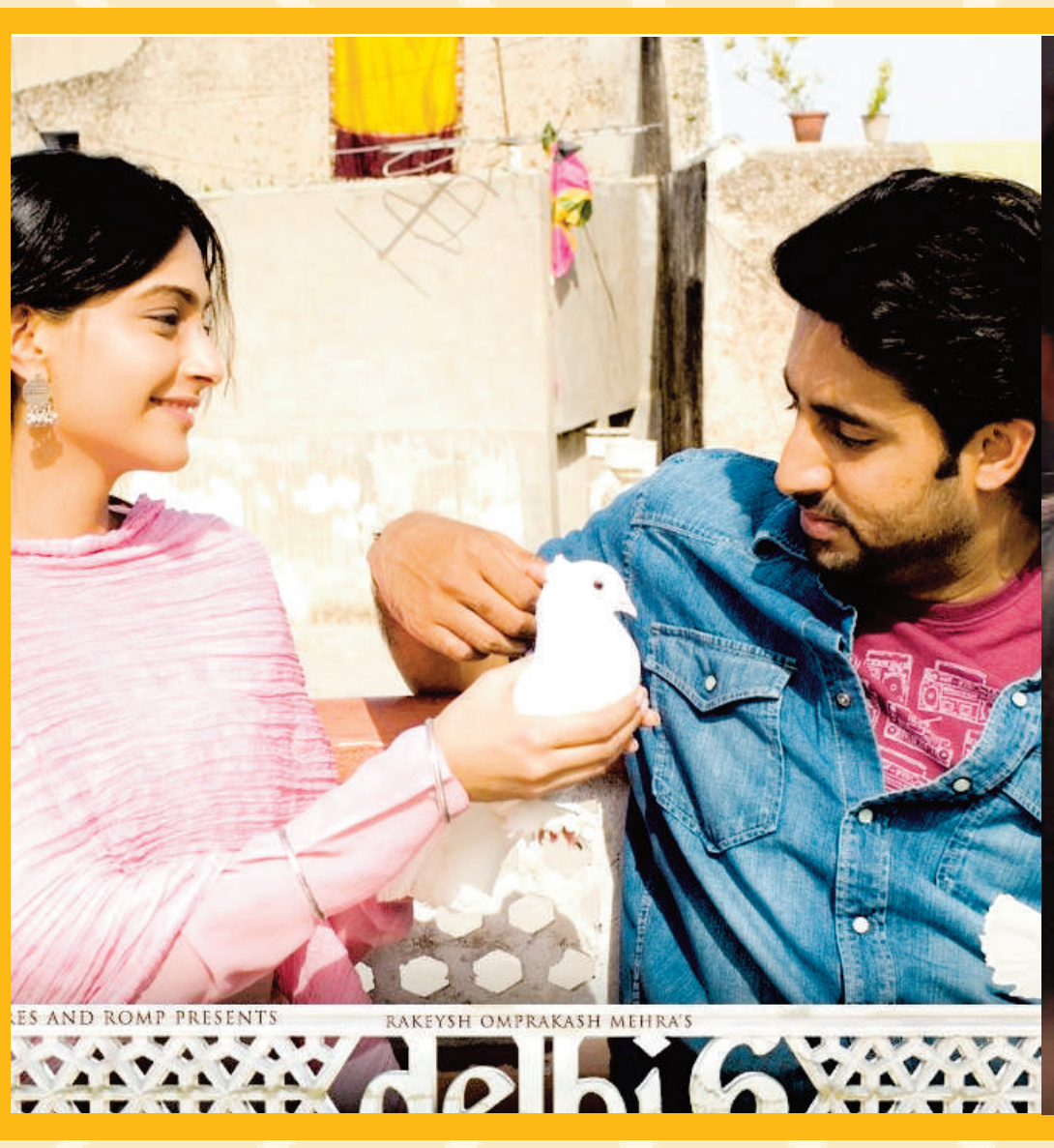

दिल्ली - 6 जैसी फिल्में दिल्ली की खूबसूरती के इर्दगिर्द घूमती हैं.

भारतीय फिल्मकारों की दिल्ली नई संभावनाओं का शहर है.

पिछले कुछ सालों में दिल्ली और बॉलीवुड, दोनों के मिजाज़ बदले हैं. भारतीय फिल्म इंडस्ट्री में यह आम आदमी और उसकी ज़िंदगी से जुड़े मुद्दों का दौर है, मध्यवर्गीय आकांक्षाएं और समस्याएं अब फिल्मकारों की पहली पसंद बन गए हैं. ऐसे में दिल्ली का अनूठा सामाजिक ढांचा इन फिल्मकारों के लिए नया पड़ाव बनता जा रहा है. दिल्ली में अलग-अलग क्षेत्रों, वर्गों और भाषाओं के लोग मौजूद हैं और उनकी जीवनशैली में बॉलीवुड को कई नई कहानियां नजर आती हैं.

दिल्ली के लिए बढते इस प्यार के पीछे फायदे का अर्थशास्त्र भी है. इन कुछ सालों में दिल्ली बदल रही है, दिल्ली में फिल्म निर्माण के बुनियादी हालातों में अंतर आया है, फिल्म निर्माण की तमाम सुविधाएं अब यहां मौजूद हैं. ऐसे में मुंबई से बाहर लोकेशन की तलाश कर रहे निर्माताओं को शहर के बुनियादी ढांचे में आया यह बदलाव अपनी ओर आकर्षित कर रहा है.

भारतीय फिल्मकारों के लिए दिल्ली नई संभावनाओं का शहर है. मुंबई को हमारी फिल्मों ने इतना दिखाया है कि नया कुछ दिखाने की संभावना नहीं रह गई है, इसके उलट अभी भी दिल्ली का हर रंग पूरी तरह से पर्दे पर नहीं उतारा गया है. दिल्ली की गलियों में बसे मध्यवर्ग का कथानक अब मुंबई की चालों और खोलियों की जिंदगी पर बनी कहानियों की जगह लेने को तैयार है.

दिल्ली का सबसे बड़ा आकर्षण है उसकी ख़ूबसूरती, दिल्ली भारत का सबसे ख़ूबसूरत महानगर है. इनकी ख़ूबसूरती को ध्यान में रख कर कहानियों का आधार इसकी दुनिया को ही बनाया जा रहा है. सुभाष घई की ब्लैक एंड ह्वाईट की कहानी लाल किला और उसके आसपास की पुरानी दिल्ली की है. फिल्म में लाल किला, जामा मस्जिद और शीशगंज गुरुद्वारे जैसी जगहें कहानी में सच्चाई का पुट भी डालती हैं और ख़ूबसूरती भी.

इन जगहों पर शूट करना फिल्मकारों के लिए फायदे का सौदा भी है. दिल्ली में 174 ऐसे ऐतिहासिक स्थल हैं जो पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की देखरेख में हैं. इन जगहों पर शूटिंग के लिए 5000 रूपए का रोजाना किराया चुकाना पड़ता है, ज़ाहिर है मुंबई या स्विटजरलैंड में सेट लगाने के बजाय यह विकल्प निर्माताओं को बेहतर लगता है. पिछले कुछ सालों में दिल्ली की पृष्ठभूमि पर बनी फिल्मों ने दिल्ली की इन ज़गहों की ख़ूबसूरती को कैमरे में कैद किया है. मुंबई और स्विटजरलैंड के लोकेशनों से ऊब चुकी जनता को यह पसंद भी आ रहा है. ऐतिहासिक विरासत के साथ-साथ दिल्ली आधुनिकता में भी पीछे नहीं है. मेट्रो और फ्लाईओवरों पर भागता यह शहर हरियाली में भी सबसे आगे है. आधुनिकता और इतिहास का यह सह-अस्तित्व दिल्ली की खासियत है. दरअसल दिल्ली फिल्मकारों के लिए एक कम्प्लीट पैकेज साबित हो रहा है.

कारण भले जो भी हो लेकिन इतना तो तय है कि दिल्ली और फिल्मवालों का रोमांस जब तक चलेगा, दिलवालों की दिल्ली फिल्मवालों की भी प्यारी बनी रहेगी.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

छोटी फिल्मों का बड़ा जादू

भारतीय फिल्मों के नए दौर में आपका स्वागत है. यह दौर सफलता के नए फार्मूलों का है. इस दौर में यह जरूरी नहीं कि जो बड़ा हो वही बेहतर हो. यह बड़ी सोच और छोटे बजट की फिल्मों का दौर है.

पिछले साल एक फिल्म आई थी- दसविदानिया. विनय पाठक की इस फिल्म को आलोचकों की वाहवाही मिली लेकिन खास सफलता नहीं मिली. कुछ दर्शकों ने इस फिल्म की संवेदनशीलता और अलग अंदाज को सराहा जरूर लेकिन टिकट खिड़की पर लंबी कतारें नहीं लगीं. फिर भी फिल्म के निर्माता फायदे में ही रहे. वजह, फिल्म का बजट था महज 45 लाख

अनुराग कश्यप की देव डी ने पहले हफ्ते में साढ़े नौ करोड़ कमाए. यह अक्षय कुमार की चांदनी चौक टू चाइना के प्रचार के बजट से भी कम है. लेकिन साल की पहले तिमाही के रिपोर्ट कार्ड में चांदनी चौक... फ्लॉप कहलाएगी तो देव डी का नाम सफल फिल्मों में दर्ज होगा.... यह बॉलीवुड के बदलते अंकगणित की झलक भर है.

भारतीय फिल्मोद्योग में यह कम बजट की फिल्मों का वक्त है. ऐसा नही है कि बड़ी फिल्में अब बन या चल नहीं रहीं लेकिन पहली बार छोटी फिल्मों ने अपनी मजबूत पहचान दर्ज कराई है. 2008 में अगर तीन बड़ी फिल्मों (सिंह इज किंग, गजनी, रब ने बना दी जोड़ी) को छोड़ दिया जाए तो बाकी सभी सफल फिल्में कम बजट की ही थीं. जहां अ वेडनेसडे, ओए लकी लकी ओए, जाने तू या जाने ना, आमिर जैसी कम बजट की फिल्मों को आलोचकों की तारीफ और बॉक्स ऑफिस पर सफलता दोनों मिली वहीं बड़ी बजट टशन, युवराज, लव स्टोरी 2050, द्रोणा औंधे मुंह गिरी.

ऐसा कोई पहली बार नहीं हुआ है, पिछले पांच सालों में कम बजट की फिल्मों ने बड़ी फिल्मों को कड़ी टक्कर दी है. भेजा फ्राई, अब तक छप्पन, लाइफ इन अ मेट्रो, खोसला का घोसला जैसी फिल्मों ने दर्शकों के दिमाग और टिकट खिड़की दोनों पर छाप छोड़ी है. कम बजट और बिना बड़े सितारों वाली ये फिल्में भारतीय फिल्मों का नया कलेवर हैं.

इस बदलाव की वजहें भी कई हैं. भारतीय फिल्मों में आए रचनात्मक, व्यवसायिक और तकनीकी बदलावों ने छोटी फिल्मों के लिए जमीन तैयार की है. सबसे बड़ा अंतर आया है फिल्म उद्योग के मूलभूत ढांचे में, कुछ निर्माताओं और कलाकारों के खेमों में बंटा बॉलीवुड अब आगे बढ़ आया है. कारपोरेट घरानों और विदेशी निर्माताओं के आने से इसका काम करने का तरीका बदल रहा है. इन नए खिलाड़ियों की इंट्री ने बॉलीवुड की सोच बदल दी है.

2007 में आई भेजा फ्राई का उदाहरण लें. महज 25 लाख में बनी इस फिल्म में काम करने वाले कलाकारों को मेहनताने के बदले फिल्म की कमाई में हिस्सा दिया गया. फिल्म की सफलता ने एक नए ट्रेंड की शुरूआत कर दी. इस तरह की रणनीति से कलाकारों का फिल्म से जुड़ाव भी बढ़ा और नए आइडियाज ले कर आ रहे फिल्मकारों को एक आसान प्लेटफार्म भी.

भारतीय फिल्मोद्योग में यह कम बजट की फिल्मों का वक्त है. ऐसा नहीं है कि बड़ी फिल्में अब बन या चल नहीं रहीं लेकिन पहली बार छोटी फिल्मों ने अपनी मजबूत पहचान दर्ज कराई है.

कई बड़े फिल्म निर्माता घरानों ने भी कम-बजट फिल्मों की ताकत को पहचान कर अपनी तैयारी कर ली है. कॉरपोरेट घरानों ने इस तरह की फिल्मों के लिए अलग कंपनियां बना ली है. यूटीवी और परसेप्ट जैसे घरानों को इन फिल्मों में अधिक फायदा और कम जोखिम का सौदा दिखता है.

5 करोड़ से भी कम बजट में बनने वाली ये फिल्में बड़े बजट की फिल्मों की तुलना में व्यवसायिक सफलता पर कम निर्भर हैं. अब तो बॉलीवुड के पुराने खिलाड़ी भी इस क्षेत्र में हाथ आजमाने को तैयार हैं.

दूसरा बड़ा बदलाव आया है दर्शकों में, इन पांच सालों में फिल्म देखनेवालों की सोच भी आगे बढ़ी है. दर्शक अब अलग तरह की फिल्में देखना चाहते हैं. भारतीय दर्शक वर्ग में अच्छी फिल्मों की भूख बढ़ी है और ये छोटी फिल्में इस भूख को ही टारगेट करती हैं. पांच साल पहले अ वेडनेसडे और आमिर जैसी फिल्में बनाना संभव नहीं था. मल्टीप्लेक्सेज के आ जाने से ऐसी फिल्मों के लिए बाजार में उतरना और वहां बने रहना संभव हो गया है.

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com

चिड़ियों की तरह चहकती थीं जेड गुडी

मौत सामने खड़ी रही और जेड गुडी उसे जश्न की तरह की तरह जीती रही. लम्हे भर की खातिर भी उसके चेहरे पर मौत की दहशत का अक्स नज़र नहीं आया. उसके हंसते-मुस्कुराते चेहरे से हमेशा ज़िंदगी का नूर ही टपकता था.रुकती-थमती सांसों को गुडी ने बेमिसाल हौसले के साथ तब तक थामे रखा, जब तक उसका मकसद पूरा नहीं हो गया. सर्वाइकल कैंसर से जूझ रही जेड गुडी ने न सिर्फ अपने आखिरी लम्हों बल्कि मरने के बाद के पलों को भी दुनिया के लिए यादगार बना दिया. ज़िंदादिली और बहादुरी की मिसाल बन गई गुडी. सबक छोड़ गई उनके लिए जो मौत के खौफ से ज़िंदगी को ही नरक बना लेते हैं. ब्रिटेन की टीवी कलाकार जेड गुडी ने अपनी मौत को जिंदगी से भी हसीन बना दिया. शिल्पा शेट्टी के खिलाफ नस्लभेदी टिप्पणी कर चर्चा में आई गुडी को फिक्र थी तो सिर्फ अपने दो बेटों की. पर वाह गुडी. मरते-मरते भी उसने बेटों की जिंदगी की खुशहाली के सारे जतन कर दिए. उनकी महफूज़ ज़िंदगी का मुकम्मल इंतज़ाम कर गई. केवल 27 साल की उम्र में जेड गुडी ने वो सारी खुशियां हासिल कर लीं, जिसे पाने में अमूमन लोगों की उम्र तमाम हो जाती हैं. खुशियां तो जैसे बेइख्तियार उसकी गुलाम बन गई थीं. ज़िंदगी के आखिरी पड़ाव पर अपने बॉय-फ्रेंड जैक ट्रीड से शादी करना, पति और बच्चों के साथ गुनगुनाता-खिलखिलाता वक्त बिताना और तो और मरने से पहले ही अपने अंतिम संस्कार की पूरी तैयारी भी कर जाना. यह काम जेड गुडी ही कर सकती थीं. वो चाहती थीं कि दुनिया उन्हें एक बहादुर और चिड़ियों की तरह चहचहाती महिला के रूप में याद करे . कैमरा, लाइट, एक्शन के बीच ज़िंदगी गुज़ारने वाली कलाकार गुडी ने इन्हीं सब के बीच ज़िंदगी को अलविदा कहा. गुडी के जज़्बे को हमारा सलाम.

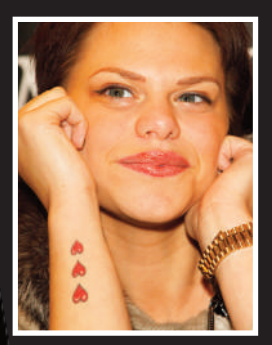

चौथी दुनिया ब्यूरो
feedback.chauthiduniya@gmail.com